• वर्ष ६६ • अंक २३ • मूल्य १ ४०

दिसम्बर (प्रथम) २०२४

पाक्षिक

परोपकारी

स्वराज्य के प्रथम मन्त्रदृष्टा, राष्ट्रीय पुनर्जागरण के पुरोधा, समग्र क्रान्ति के अग्रदूत, वेदोद्धारक, आर्य समाज के संस्थापक एवं अनन्य ईश्वर भक्त

स्वामी दयानन्द सरस्वती

ऋषि उद्यान की भव्य यज्ञशाला में आयोजित 'यजुर्वेद पारायण यज्ञ' के अवसर पर उपस्थित वैदिक संन्यासी मण्डल।

यज्ञशाला में आयोजित यज्ञ में यज्ञ के ब्रह्मा आचार्य कमलेश शास्त्री के नेतृत्व में यजुर्वेद का पाठ करती गुरुकुल शिवगंज की ब्रह्मचारिणियाँ।

ऋषि मेले में इस बार बाहर से आने वाले अतिथियों के पंजीयन की विशेष व्यवस्था की गई।

दानवीर एवं समाजसेवी श्री सुधीर नागपाल जी को सम्मानित करते परोपकारिणी सभा के मन्त्री श्री कन्हैयालाल आर्य

महर्षि दयानन्द सरस्वती की
उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा
का मुखपत्र

ओ३म्

विद्याविलासमनसो धृतशीलशिक्षाः,
सत्यव्रता रहितमानमलापहाराः।
संसारदुःखदलनेन सुभूषिता ये,
धन्या नरा विहितकर्म परोपकाराः।।

वर्ष : ६६ **अंक** : २३

दयानन्दाब्द: २००

विक्रम संवत् मार्गशीर्ष शुक्ल २०८१

कलि संवत् - ५१२५

सृष्टि संवत् - १,९६,०८,५३,१२५

▪

सम्पादक

डॉ. वेदपाल

▪

प्रकाशक- परोपकारिणी सभा,
केसरगंज, अजमेर- ३०५००१
दूरभाष: ०१४५-२४६०१६४
०८८९०३१६९६१

▪

मुद्रक- डॉ. दिनेशचन्द्र शर्मा
वैदिक यन्त्रालय, अजमेर।
८२०९५८६१६६

▪

परोपकारी का शुल्क

भारत में

एक वर्ष-४०० रु.

पाँच वर्ष-१५०० रु.

आजीवन (२० वर्ष) -६००० रु.

एक प्रति - २०/- रु.

वैदिक पुस्तकालय : ०१४५-२४६०१२०
०७८७८३०३३८२

ऋषि उद्यान : ०१४५-२९४८६९८

RNI. No. ३९५९ / ५९

परोपकारी

दिसम्बर प्रथम, २०२४

अनुक्रम

०१. प्रचार के माध्यम	सम्पादकीय	०४
०२. अनुकरणीय सोच व्यवहार तथा त्याज्य...	प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'	०६
* प्रवेश सूचना		०९
०३. वेद की ज्योति जलती रहे	श्री कन्हैयालाल आर्य	१०
* नवीन प्रकाशन पर ५० प्रतिशत की विशेष छूट		१४
०४. आर्यों का सार्वभौम चक्रवर्ती साम्राज्य	डॉ. महावीर मीमांसक	१५
०५. महर्षि को समर्पित व्यक्तित्व धर्मवीर...	डॉ. ज्वलन्तकुमार शास्त्री	१८
०६. निवेदन		२४
०७. वैदिक राष्ट्र का स्वरूप एवं तात्त्विक...	डॉ. आशुतोष पारीक	२५
०८. ज्ञान सूक्त-२२	डॉ. धर्मवीर	२९
०९. सुखवाद और ऋषि दयानन्द	श्री पं. गंगाप्रसाद उपाध्याय	३२
* परोपकारिणी सभा द्वारा प्रकाशित पुस्तकों पर विशेष छूट		३३
१०. संस्था की ओर से....		३४

www.paropkarinisabha.com
email : psabhaa@gmail.com

उपनिषद्, दर्शन, प्रवचन आदि सुनने हेतु बटन दबाएँ
www.paropkarinisabha.com→gallery→videos

'परोपकारी' पत्रिका में प्रकाशित सभी आलेखों में व्यक्त विचार लेखकों के निजी हैं। इन्हें सम्पादकीय नीति नहीं समझा जाये।
किसी भी विवाद की परिस्थिति में न्यायक्षेत्र अजमेर ही होगा।

सम्पादकीय

प्रचार के माध्यम

किसी भी विचारधारा को दूसरों तक पहुँचाने के अनेक साधन या माध्यम हैं। प्राय: सभी विचारक अपने विचारों को अन्य के लिए उपयोगी/कल्याणकारी मानते हुए उन तक पहुँचाने का प्रयत्न करते हैं। इन महापुरुषों/विचारकों की अनुपस्थिति में उनके अनुयायी भी उन विचारों का प्रचार-प्रसार करने के लिए प्रयत्नशील देखे जाते हैं।

विचारों के सम्प्रेषण/दूसरों तक पहुँचाने के लिए मुख्यत: निम्न साधन या माध्यम महत्त्वपूर्ण हैं-

१. वाणी- विचारधारा के प्रचार-प्रसार का यह महत्त्वपूर्ण साधन है। सामान्यत: कोई भी विचारक अपने विचारों के प्रचार के लिए सर्वप्रथम इसी साधन का उपयोग करता है। अर्थात् वह बोलकर अपने विचारों का प्रचार करता है, किन्तु मात्र वाणी द्वारा बोले गए शब्द शनै:-शनै: श्रोतृवर्ग द्वारा विस्मृत हो जाते हैं और यदि स्मरण भी रखे जाते हैं, तो भी एक छोटे समूह अथवा कुछ व्यक्तियों के द्वारा ही। ऐसे में विचारों के स्थायित्व की दृष्टि से वाणी द्वारा उपदेश करने के साथ अन्य साधन-माध्यम की आवश्यकता होती है। उन अन्य सहायक माध्यमों में महत्त्वपूर्ण है-

२. लेखनी- इसमें व्यक्ति लिखकर लेख या पुस्तक के माध्यम से अपने विचारों को व्यक्त करता है। वह स्वयं तथा उसके अनुयायी इस माध्यम का प्रयोग कर उन विचारों को अन्यों तक पहुँचाते हैं। वाणी द्वारा उच्चरित शब्द जहाँ सीमित समय तथा सीमित क्षेत्र तक ही पहुँचते हैं, वहीं लिखित सामग्री के प्रसार का क्षेत्र व समय व्यापक होना सम्भव है। साथ ही इसका प्रयोग आवश्यकतानुसार वक्ता की अनुपस्थिति में भी पुन:-पुन: किया जाने के कारण यह स्थायी महत्त्व रखता है। प्राय: सभी विचारक और संगठन इसका वाणी की अपेक्षा अधिक सहाय लेते हैं। इसके लिए ग्रन्थ, लेख, ट्रैक्ट तथा हैन्डबिल आदि के रूप इसका प्रयोग होता है।

उक्त दोनों माध्यमों को प्रभावी बनाने के लिए महत्त्वपूर्ण सहायक माध्यम है-

३. सेवा कार्य- वाणी और लेखनी द्वारा प्रसृत विचारों का क्रियात्मक रूप उन विचारकों तथा उनके अनुयायिओं के व्यवहार/सेवाकार्य के रूप में परिलक्षित होता है। यदि प्रचारकों-प्रसारकों की कथनी करनी एक हो, उनका व्यवहार उपदिष्ट विचार के अनुरूप हो अथवा आवश्यकता पड़ने पर करुणा आदि गुणों से युक्त हो सहायक के रूप में दिखाई दे, तो वह अधिक प्रभावी हो जाता है।

मनुष्य समय-समय पर प्राकृतिक एवं मानवजन्य परेशानियों का सामना करता है। जिस किसी भी विचारधारा के प्रचारक ऐसे विषम समय में सहायक के रूप में सहयोगी बनते हैं, उनके विचार पीड़ित व्यक्ति को प्रभावित करते हैं।

शिक्षा प्रसार के नाम पर खोले जाने वाले विद्यालय-स्कूल तथा सेवा के नाम पर चिकित्सालय-अनाथालय आदि अपना विशेष प्रभाव रखते हैं। इतिहास साक्षी है कि सन् १८५७ की क्रान्ति के विफल होने के पश्चात् ईसाई समुदाय ने ब्रिटिश राज्य की सुरक्षा (क्योंकि इस क्रान्ति के पश्चात् भारत की शासन सत्ता ईस्ट इण्डिया कम्पनी के नियन्त्रण से ब्रिटेन की महारानी-वहाँ की पार्लियामेण्ट के हाथ में चली गई थी।) के लिए इन माध्यमों का उपयोग किया, जो मानसिक रूप से उनकी अनुकूलता का महत्त्वपूर्ण माध्यम भी बना।

यद्यपि उनका यह कार्य निर्व्याज रूप से मानव कल्याण के लिए न होकर ईसाईयत के प्रचार के लिए है। पुनरपि यह अपना प्रभाव तो रखता ही है। इसे स्वीकारने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

राजस्थान के अकाल, क्वेटा के भूकम्प आदि अवसरों

पर तत्कालीन आर्यनेताओं ने जो कार्य किए थे, उस सबका सुपरिणाम भी उस समय आर्यसमाज की प्रतिष्ठा को बढ़ाने वाला हुआ था।

अत: वाणी व लेखनी के साथ यदि व्यवहार व सेवाकार्य भी तदनुरूप हो, तो वह उस विचार के प्रसार का महत्त्वपूर्ण माध्यम बन जाता है। उक्त के साथ ही वैचारिक प्रचार का एक अन्य साधन है-

४. बल प्रयोग- विचारधारा के प्रसार का एक अन्य महत्त्वपूर्ण साधन रहा है- बल प्रयोग। विश्व इतिहास साक्षी है कि अरब में इस्लाम की विचारधारा बल प्रयोग के सहारे फैली है। मिस्र जैसी सभ्यता तलवार के आधार पर इस्लामिक हुई तो जर्मनी ईसाई।

भारत वर्ष में भी देवगिरि, कलिंग, आनेगोंदी आदि राज्य तलवार के बल से ही इस्लाम में दीक्षित किए गए। इसके पश्चात् भी यह क्रम जारी रहा।

इसी बल प्रयोग का एक अन्य रूप लोभ-लालच भी है।

उक्त तथा एतादृश अन्य साधन विचारधारा के प्रसार के लिए प्रयोग में लाए जाते रहे हैं, किन्तु वैदिक विचारधारा जिसे महर्षि ने उन्नीसवीं सदी में वाणी एवं लेखनी तथा अपने सद्व्यवहार से प्रसृत करने में स्वयं को सर्वात्मना समर्पित कर दिया था। आज उनके अनुयायिओं द्वारा महर्षि की द्विजन्म शताब्दी के आयोजनों के रूप में मुख्यत: वाणी द्वारा प्रसृत करने का उद्योग किया जा रहा है।

द्वि जन्मशताब्दी के आयोजन की शृंखला में दिल्ली के इन्दिरा गांधी स्टेडियम से प्रारम्भ होकर तालकटोरा, टंकारा, अजमेर, कुरुक्षेत्र, जालन्धर और सिरसागंज तक के **सभी आयोजनों में वाणी के द्वारा जितना प्रसार करने का प्रयत्न किया गया है क्या उतना प्रयास प्रकाशित सामग्री के द्वारा भी हुआ है? साथ ही सेवा प्रकल्प प्रारम्भ करने की दिशा में कोई नई पहल की गई हो ऐसी भी जानकारी नहीं है।**

यह चिन्त्य है कि क्या केवल भाषणों के माध्यम से अगली एक सदी तक विचार प्रसृत होते रहेंगे? यदि नहीं तो समानुपातिक रूप में लेखन, ट्रैक्ट आदि के साथ-साथ समाज सेवा के कार्यों का भी प्रसार आवश्यक है। क्या नेतृवर्ग इस ओर भी दृष्टिपात कर सक्रियता प्रदर्शित करेगा?

डॉ. वेदपाल

दयानन्द धर्मार्थ चिकित्सालय

परोपकारिणी सभा द्वारा ऋषि उद्यान, अजमेर में कई वर्ष से संचालित आयुर्वैदिक चिकित्सालय सोमवार को छोड़ सप्ताह में ६ दिन मार्च से अक्टूबर सायं ५ से ७ बजे तक व नवंबर से फरवरी सायं ४ से ६ बजे तक दो घण्टे खुलेगा।

इसमें वरिष्ठ आयुर्वेद चिकित्सक की सेवा उपलब्ध है। चिकित्सा परामर्श व चिकित्सालय में उपलब्ध सभी औषधियाँ नि:शुल्क दी जाती हैं। यदि आप अपने धन को इस पुण्य कार्य में लगाना चाहते हैं, तो परोपकारिणी सभा के बैंक खाते में सहयोग भेज सकते हैं। सहयोग भेजकर ८८९०३१६९६१ पर सूचित अवश्य कर देवें। **- मन्त्री**

अग्निहोत्र

अग्निहोत्रादि यज्ञों से वायु, वृष्टि, जल की शुद्धि द्वारा आरोग्यता का होना सिद्ध है, और उससे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि होती है। सत्यार्थप्रकाश समु. १२

अनुकरणीय सोच व्यवहार तथा त्याज्य व्यवहार

प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

मैंने अपने अस्सी वर्ष के लम्बे सक्रिय सामाजिक जीवन में अनेक आर्य पुरुषों, माननीय आर्यनेताओं तथा विद्वानों को बहुत निकट से देखा। कई एक की नीति रीति तथा अनुकरणीय व्यवहार से बहुत कुछ सीखा। संस्थाओं का जातियों का इतिहास सत्पुरुषों के अनुकरणीय व्यवहार से ही बनता है। आज ऐसे लम्बे समय के संस्मरणों में से कुछ अनुकरणीय सोच व्यवहार की घटनाओं को लेखबद्ध किया जाता है।

उन्हें नये-नये समाज सेवकों के निर्माण का ध्यान रहता था- पुरानी पीढ़ी के नेताओं तथा विद्वानों को अगली पीढ़ी के समाजसेवकों के जीवन निर्माण का सदा ध्यान रहता था। ऐसी कौन-कौन सी घटना यहाँ दी जावें? सन् १९५९ में मथुरा आर्यसमाज के इतिहास की हीरक जयंती के महोत्सव पर मैं कई एक युवक मित्रों को साथ लेकर गया। कविरत्न प्रकाश जी के दर्शन करने पहुंचे तो वही पर पं. गंगाप्रसाद जी उपाध्याय व माता कला देवी जी भी बैठे थे। उपाध्याय जी नंगे सिर बैठे थे। मैं पहचान न सका। वह कुछ बोले तो आवाज पहचान कर उनके चरण स्पर्श कर सिर झुकाया तो आपने अत्यन्त स्नेह से मुझे अपनी बाहों में लेकर छाती से जो कसकर लगाया तो दर्शक इस दृश्य को देखकर दंग रह गये।

प्रकाश जी ने पूछा, ''यह युवक कौन है जिसे आप इतने भाव भरित हृदय से छाती से लगा रहे हैं। उपाध्याय जी ने मेरा नाम बताया तो प्रकाश जी बोले, ''इसमें तो पं. लेखराम जी का जोश व तड़प सब बताते हैं।''

तब उपाध्याय जी ने कहा, ''यह कहिये कि यह भविष्य का पं. लेखराम है।'' ऐसे कुछ और वचन बोले। प्रकाश जी तथा उपाध्याय जी दोनों के उद्‌गार वहाँ बैठे आर्यजनों ने सुने। इन दोनों के मनोभावों का प्रयोजन मेरा जीवन निर्माण था। तब हमारे सब बड़ों को नये-नये समाज सेवकों को कुछ बनने की प्रेरणा देकर आगे लाना था।

महाशय कृष्ण जी का पत्र पाकर- मैं आर्य स्कूल नरवाना में कुछ समय के लिये अध्यापक के रूप में कार्य करता रहा। मेरे लेख व गीत आर्यपत्रों तथा महाशय जी के दैनिक प्रताप में छपते रहते थे। एक दिन स्कूल का सेवक मुझे कक्षा में पढ़ाते समय मेरी डाक दे गया। मैं देखते ही महाशय जी के बड़प्पन तथा आर्यत्व का अद्‌भुत चित्र था। वह मेरे लिए पिता समान था। मैं उनके लिए बालक ही तो था। ''मान्यवर राजेन्द्र'' सम्बोधन के ये शब्द पढ़कर कौन उनकी महानता तथा एक युवक कार्यकर्ता से असीम स्नेह की प्रशंसा नहीं करेगा?

पत्र में मुझे प्रेरणा दी गई कि अब समाज को ऊंची योग्यता के सेवक चाहिये। आप इतिहास विषय में एम.ए. कर लें। मैंने उसी क्षण स्कूल से छुट्टी लेकर एम.ए. इतिहास करने के लिए प्रवेश पाने का दृढ़ निश्चय कर लिया। आज मैं यहाँ हूँ और जो कुछ भी बन पाया इसमें पूज्य महाशय जी की कृपा व आशीर्वाद का विशेष महत्त्व है। महाशय जी का वह पत्र अब भी मेरे पास सुरक्षित है। आज नेता लोगों में अहंकार है। वह एक साधारण सेवक को 'मान्यवर' लिखकर सम्बोधित क्यों करेंगे?

स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी ने इतिहास रच दिया- यह घटना सन् १९५४ के फरवरी के अन्तिम सप्ताह अथवा मार्च मास के प्रथम सप्ताह की है। श्री स्वामी जी रुग्ण थे और दिल्ली में उनका उपचार चल रहा था। आप अपने नियम के अनुसार ऋषि बोध पर्व के लिए अपने आश्रम दीनानगर पहुँच गये। मैं उनके स्वास्थ्य का पता करने व दर्शन करने मठ पहुँच गया। भेंट होते ही धर्म चर्चा चल पड़ी तो स्वामी जी ने मुझे कहा कि 'हमारा राजस्थान' पुस्तक के विद्वान् लेखक ने अपनी पुस्तक मुझे भेंट की है। उसने इस पुस्तक में सन् १८५७

की क्रान्ति की चर्चा करते हुए इसे भारत में स्वराज्य संग्राम मानकर ऋषि दयानन्द को इस विप्लव का प्रेरणा स्रोत अथवा अग्रणी माना है। मैंने दिल्ली से लौटते हुए जालन्धर छावनी स्टेशन पर वह पुस्तक प्रिं. रामचन्द्र जावेद को भेंट करते हुए कहा है कि वह इस विषय पर चिन्तन व खोज करके अपना मत बतायें कि यह कथन सत्य है या नहीं।

मुझे भी आज्ञा दी कि तुम भी इस विषय में गम्भीर अध्ययन करके कुछ लिखो। इस विषय पर कुछ निर्णायक प्रामाणिक मत दें। मैंने आपका आदेश शिरोधार्य किया। जावेद जी ने स्वामी द्वारा सौंपे गये इस कार्य पर पत्रों में अपना लेख दिया। मैंने स्वामी जी द्वारा दी गई आज्ञा पर तब एक लेख लिखा था।

स्वामी जी का अप्रैल के प्रथम सप्ताह मुम्बई में निधन हो गया। मैं सन् १८५७ के विप्लव विषय में अध्ययन तो करता रहा और आर्य विद्वानों से कहता रहा कि स्वामी जी ने जो कार्य जावेद जी जैसे अनुभवी विद्वान् लेखक को सौंपा है, वही मुझे जैसे एक अनुभवहीन युवा लेखक को सौंपा है। मेरा यह कथन सुनकर पं. शान्तिप्रकाश जी जैसे किसी भी विद्वान् ने कोई प्रतिक्रिया न दी।

एक दिन किसी प्रसंग में स्वामी सर्वानन्द जी ने एक घटना सुनाकर कहा कि नये-नये विद्वानों का निर्माण करने के लिए स्वामी जी उन्हें कोई विषय देकर खोज का व लिखने का कार्य सौंप दिया करते थे। तब मैं भी समझ गया कि मुझे शोध व लेखन कार्य में आगे बढ़ने के लिए आपने ऐसा आदेश दिया है।

भले ही इस विषय में मैंने कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ तो न लिखा परन्तु बहुत कुछ अध्ययन करके कई लेख लिखे। ऋषि के अब तक के सबसे बड़े जीवन चरित्र में भी 'हमारा राजस्थान' पुस्तक के लेखक के मत का सप्रमाण खण्डन किया। स्वामी पूर्णानन्द जी की इस विषय की पुस्तक का सम्पादन करने का भी मुझे सौभाग्य मिला। यह बताना यहाँ लाभप्रद रहेगा कि माननीय जावेद जी ने इस विषय पर एक पृष्ठ भी न लिखा। हम यह भी कह सकते हैं कि आपने इस विषय में कतई कोई रुचि न ली।

मुझे स्वामी जी द्वारा सौंपे गये कार्य से बड़ा लाभ पहुँचा। ऋषि जीवन में रुचि लेनेवाले सज्जन मेरी खोज,मेरे अध्ययन तथा मेरे मत को विशेष महत्त्व देते हैं। स्वामी जी ऐसे ही गवेषकों लेखकों का निर्माण किया करते थे।

दक्षिण से कार्य सौंपे गये- दक्षिण भारत से श्री पं. नरेन्द्र जी ने अपनी संक्षिप्त आत्मकथा के सम्पादन का कार्य सौंपा तो पूज्य उपाध्याय जी ने अपनी पुस्तक प्यामे हयात के सम्पादन का कार्य सौंपा। श्री पं. नरेन्द्र जी का बहुत बड़ा जीवन चरित्र लिखने का मैंने सौभाग्य प्राप्त किया तो उन्हीं के संगी साथी पं. गंगाराम जी एडवोकेट की खोजपूर्ण जीवनी लिखकर मैंने आर्य साहित्य को समृद्ध बनाया और दक्षिण में बहुत प्रसिद्धि प्राप्त की।

ऐसे ही कर्नाटक सभा की आज्ञा पाकर कर्नाटक प्रदेश के आर्यसमाज का इतिहास लिखने का कार्य मुझे सौंपा गया। दक्षिण के आर्यों को ठोस प्रामाणिक इतिहास की सामग्री मिल गई। इसका दूसरा उदाहरण कोई है ही नहीं।

एक विदेशी मुसलमान स्कॉलर डॉ. शहरयार की प्रेरणा से मैंने तीन-चार सौ पृष्ठों का श्री पं. रामचन्द्र जी देहलवी का प्रामाणिक जीवन चरित्र प्रकाशित करवा दिया। क्या यह एक अनूठी घटना नहीं कि एक विदेशी विधर्मी की मांग पर यह खोजपूर्ण जीवन चरित्र छप गया।

कुछ तड़प-कुछ झड़प - कोई तीस वर्ष से भी ऊपर समय तक मैं 'कुछ तड़प-कुछ झड़प' शीर्षक से परोपकारी आदि पत्रों में लेखमाला देकर विधर्मियों तथा विरोधियों के आर्यसमाज पर लिखे गये प्रत्येक लेख का उत्तर देता रहा। इस अनूठी लेखमाला के लेखन, प्रकाशन व लोकप्रियता का डॉ. धर्मवीर जी को भी विशेष श्रेय प्राप्त है। कुछ बन्धुओं की इच्छा है कि यह लेखमाला

पुस्तकमाला के रूप में तीन-चार भागों में छप जावे। जीवन की सांझ में क्या-क्या कर पाता हूँ देखा जावेगा।

स्वामी सत्यप्रकाश जी का आदेश - सन् १९८३ में महर्षि की बलिदान शताब्दी पर इसी शैली में स्वामी सत्यप्रकाश जी ने स्मृति ग्रन्थ के लिए आर्यसमाज द्वारा विरोधियों के आर्यसाहित्य के खण्डन में लिखे गये उत्तर प्रत्युत्तर में लिखे गये आर्यसाहित्य पर एक प्रामाणिक तथा खोजपूर्ण विशेष लेख लिखवाया। यह लेख आर्य सामाजिक साहित्य के इतिहास में अपने विषय व शैली का पहला लेख है।

त्याज्य व्यवहार - आर्यसमाज के आरम्भिक काल में सरकारी दूत राय मूलराज जैसे कई बाबू समाज में घुस गये जिनके मन, वचन व कर्म दोषयुक्त थे। डॉ. भारतीय ने परोपकारिणी सभा के इतिहास तथा अपने ग्रन्थ लेखक कोश में मूलराज की बहुत प्रशंसा करते हुए उसे ऋषि का बहुत बड़ा भक्त लिखा है। इसी मूलराज ने ऋषि जी के सात बार लिखने पर भी महर्षि की एक छोटी सी पुस्तक का अंग्रेजी अनुवाद करके न दिया। नहीं अनुवाद करुंगा, यह भी न कहा। पूज्य श्री मीमांसक तथा डॉ. वेदपाल जी आदि विद्वानों ने इसे कपटपूर्ण व्यवहार माना है। मांसाहार का प्रचारक था, यह ऋषि जी के बलिदान के पश्चात् सबको ज्ञान हो गया। आर्यसमाज के इतिहास को जितना दूषित कर सकता था, इसने किया।

इसके मरने के पश्चात् डॉ. भारतीय जोड़ तोड़ करके परोपकारिणी सभा में घुसा। श्रीकरण शारदा का कृपा पात्र बनकर इसने सभा का व समाज का इतिहास दूषित किया इसका प्रमाण परोपकारिणी सभा का इतिहास तथा इसका लेखक कोश आदि पुस्तकें हैं।

सभा के पुस्तकालय की पुस्तकें उठाकर जोधपुर अपने घर पहुँचा दीं। कई भद्रपुरुष जानते हुए भी नहीं बोले। विद्वानों को, नेताओं को छोड़िये महर्षि के नाम के साथ भी अपवाद रूप में 'जी' शब्द लगाता था।

महात्मा हंसराज ने ऋषि जी को देखा ही नहीं था इसने ऋषि जी का श्रोता भी बनवा दिया।

महात्मा हंसराज स्वयं को बी.ए. में लाहौर में पं. गुरुदत्त का सहपाठी लिखते हैं। यह महात्मा जी को कोलकाता से बी.ए. करवाता है।

इतिहास को कैसे-कैसे तोड़ मरोड़ दिया यह क्या-क्या बताया जावे? पं. लेखराम को आर्यसमाज 'शहीदे अकबर' (शहीद शिरोमणि) लिखता व मानता आया है इसने उनके लिखे ऋषि जीवन को विवरणों का पुलिन्दा घोषित कर दिया। महाशय कृष्ण जी, लाला लाजपतराय जी, लाला चरणदास पुरी, श्री देवीदास, राजेन्द्र 'जिज्ञासु' तथा नौबहार सिंह, श्री सन्तराम बी.ए. का इतिहास बिगाड़कर रख दिया।

मैं श्री नौबहार सिंह का कई वर्ष तक निष्ठावान पाठक रहा। इस श्रीमान् ने सन् १८८४ में उसका निधन करवा दिया।

आर्यसमाज ने विधर्मियों के साहित्य व आक्षेपों का जो उत्तर दिया उसे मेरा पाण्डुलिपि मंगवा कर पढ़ा फिर उन विधर्मी लेखकों व उनके साहित्य विषय में मनमानी बातें लिख दीं। इसे इस्लामी ईसाई साहित्य व साहित्यकारों की जानकारी कहाँ से व कैसे हो गई। अपनी जानकारी के स्रोत का डर क्यों?

मरने से पहले श्री टी. एल. वासवानी आदि को सब आर्य विद्वानों (यथा पं. लेखराम) से भी बड़ा विद्वान् श्रीमान् ने लिखा है? इसे कौन बतावे कि पं. लेखराम जी ने वासवानी जी को मुसलमान होने से बचाया था। क्या प्रमाण दूँ?

महाराष्ट्र के गुणी विद्वान् प्रिंसिपल वेदकुमार जी का लेखक कोश में नाम तक नहीं जिनका आर्यसमाज व आर्य साहित्य से कुछ लेना देना ही नहीं उनका लेखककोश में गुण कीर्तन पढ़ लीजिये।

श्री डॉ. रामप्रकाश को अपना साहित्य बेचने की इनकी बात पक्की हो गई। डॉ. रामप्रकाश जी ने मुझे बताया कि उन्होंने इनको मुँह मांगी राशि से भी अधिक

धन का भुगतान करके कहा, ''आप ट्रक से हमें अपने दुर्लभ पुस्तक भण्डार भेज दें। वहाँ ट्रक से साहित्य पहुँच गया। मैं स्वामी सम्पूर्णानन्द जी के साथ उस साहित्य को देखने गया।''

वहाँ कुछ भी दुर्लभ पुस्तक पोथी नहीं थी। परोपकारी मासिक के सम्पादक के नाम समीक्षा के लिये भेजी गई पुस्तकों तथा अन्य पत्र-पत्रिकाओं की प्राप्त प्रतियाँ थीं। हम बड़े निराश हुए। रामप्रकाश जी से पूछा, यह क्या?

आपने कहा, ''मेरा धर्म मेरे साथ, उसका कर्म उसके साथ।''

इस घटना के पश्चात् परोपकारी में फिर छपा, मेरे पुस्तकालय का दुर्लभ प्रकोष्ठ-

अब सारी कहानी जो अजमेर से सुनने को मिलती रही, यहाँ क्या लिखें। परोपकारिणी सभा के श्रीकरण शारदा युग के सब अधिकारी और मेरे जैसे सदस्य सारा इनका इतिहास जानकर भी मौन साधे रहे। मुझे तो सब सच बता दिया। स्वामी सर्वानन्द जी को भी बता दिया परन्तु परोपकारिणी सभा से चुराई गई पुस्तकों पर अश्रु ही टपकाने से क्या बनना था। किसी दूसरे वैदिक विद्वान् को यज्ञ का भी ब्रह्मा बनने न दिया गया। श्री स्वामी सर्वानन्द जी ने प्रधान बनकर पं. सत्यानन्द जी वेदवागीश को पहली बार यज्ञ का ब्रह्मा बनाया।

आर्यसमाज में जब तक इस प्रकार के त्याज्य व्यवहार वाले फुर्तीले नीतिज्ञ पदों पर आसीन रहेंगे भविष्य तो अंधकारमय ही रहेगा। दु:खी मन से समाज हित में कुछ लिखना पड़ गया। न लिखता तो क्या वह धर्म माना जाता?

श्रीमान् भारतीय ने जो कुछ भी लिखा है धन प्राप्ति के लिये लिखा है। धर्म प्रचार व धर्म प्रेम से कुछ नहीं लिखा। परोपकारिणी सभा ने इसकी एक पुस्तक पर इसे मनचाही राशि न दी तो इसने सभा की निन्दा में पुस्तकों में लिखा। प्रचार किया। अपनी भूल सुझाने पर भी कभी क्षमा नहीं मांगी। अपने को आर्यसमाज में सबसे बड़ा इतिहासकार घोषित करता रहा। इसे यह भी ज्ञान नहीं था कि जोधपुर का राज परिवार महाराणा नहीं था। राठौर है। आर्यसमाज के कई शिरोमणि लेखकों तथा श्रेष्ठ उर्दू ग्रन्थों पर इसे मेरे द्वारा कुछ लिखा न मिला तो यह उन पर एक शब्द न लिख पाया यथा श्री सन्तराम जी अजमानी, आर्यवीरों का दर्शन पुस्तक के लेखक श्री रामनाथ कालिया।

मेरी नई पुस्तक के छपते ही पत्र लिखकर उसकी प्रशंसा करके मांग लिया करता था। किसी पुस्तक के प्रसार में कभी समीक्षा लिखकर भी सहयोग न किया। श्री विजय आर्य जी से एक पुस्तक के प्रकाशन पर धन की अधिक मांग पर झगड़ा कर दिया और फिर उनके गीत गाने लग गया। मांग-मांग कर पुरस्कार प्राप्त करने में सदा पत्र पर पत्र लिखे।

आर्यसमाज की क्षति देखकर यह कुछ तथ्य देने पड़े। आर्यसमाज के सेवक इससे कुछ शिक्षा ग्रहण करें तो अच्छा होगा। इसकी क्या-क्या घृणित घटना दी जावे?

वेद सदन, नई सूरज नगरी, अबोहर, पंजाब।

प्रवेश सूचना

परोपकारिणी सभा, अजमेर द्वारा ऋषि उद्यान, अजमेर में सञ्चालित आर्ष गुरुकुल में प्रवेश प्रारम्भ हैं। वैदिक धर्म के उपदेशक-प्रचारक बनने के इच्छुक युवा प्रवेश हेतु शीघ्र आवेदन करें।

प्रवेश हेतु अविवाहित एवं आठवीं उत्तीर्ण होना अनिवार्य है। भोजन एवं आवास की नि:शुल्क सुविधा है। **सम्पर्क सूत्र: ८८९०३१६९६१**

वेद की ज्योति जलती रहे

श्री कन्हैयालाल आर्य

वेदों को जो सर्वोच्च सम्मान भारतीय साहित्य, संस्कृति, सभ्यता में प्राप्त रहा है, वह किसी अन्य ग्रन्थ को प्राप्त नहीं हुआ। उसके अनेक कारण हैं-

१. वेद ईश्वर द्वारा प्रदत्त ज्ञान है, अतः वह निर्भ्रम और कल्याणकारी ज्ञान है।

२. वेद समस्त सत्यविद्याओं का भण्डार है। अतः वह ज्ञान का भी भण्डार है।

३. वेदों में मनुष्य की उन्नति के लिए धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष का उपदेश है, जो मनुष्य के जीवन को सुखी-शान्त रखने के उपाय भी बताता है और मोक्ष के मार्ग पर ले जाता है।

यह विशेषता किसी अन्य ग्रन्थ में नहीं है। इन्हीं विशेषताओं के कारण वेदों का महत्त्व भी अपरम्पार है।

वेद का स्वरूप अत्यन्त विशाल है, वेदज्ञान का अथाह समुद्र है, उसमें कितना और क्या-क्या भरा है? कौन-कौन से अनमोल रत्न उसकी कोख में छिपे हैं? यह जान पाना साधारण बात नहीं है। किन्तु यह निश्चित है कि जो भी इस ज्ञान रूपी समुद्र में से कुछ बूंदों को प्राप्त कर लेता है उसका जीवन सार्थक हो जाता है। इस अथाह सागर में जो जितनी गहराई में जाता है, जितनी बार जाता है उसे सदैव कुछ नया ही मिलता है।

वेद परमात्मा का ज्ञान है, पूर्ण ज्ञान है, सब सत्य विद्याओं का भण्डार वेद ही है, सृष्टि का प्रथम ज्ञान है, धर्म का आधार वेद है, हमारी पहली संस्कृति वेद है। वेद मनुष्य मात्र के कल्याण के लिए है, वेद सनातन है। संसार के अनेक ग्रन्थ, शास्त्र पुस्तकें और देश-विदेश के अनेक विद्वानों ने इसे **ईश्वरीय ज्ञान और सनातन धर्म की पहली** संस्कृति बतलाया है। वेद में कहा है- **''सा प्रथमा संस्कृति विश्ववारा''** अर्थात् यह संसार की प्रथम संस्कृति है। आर्यसमाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने आर्यसमाज के तीसरे नियम में स्पष्ट कहा है- ''वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है, वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।''

वेद विद्या की वह परम साधना है आराधना है जिससे अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि होती है। इसलिए ऋषियों ने वेद के अध्ययन को ही स्वाध्याय कहा है। जिस मानस में वेद की ज्योति प्रज्वलित रहती है-वहाँ पाप-ताप और मोह-शोक का अन्धकार नहीं रहता। जहाँ वेद की ज्योति जलती है, वहां अहम का अन्धकार नहीं ठहरता। वहाँ किसी प्रकार का भय, शोक व रोग नहीं होता। वेद परम ज्योति है, परम आलोक है, परम प्रकाश है। वेद वह पावन परम पथ है, मार्ग है-जिस पर चलकर सभी परम सुख-शान्ति प्राप्त करते हैं, क्योंकि इस वेद पथ पर न तो भय है, न शोक, न रोग।

वेद ही हमें बताते हैं कि परमात्मा एक है और उसके नाम अनन्त-असंख्य है। वह सच्चिदानन्द स्वरूप है। वह अजन्मा, निर्विकारी, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्व-ईश्वर, सर्व-अन्तर्यामी, निराकार, सर्वशक्तिमान् व सर्वज्ञ है। उसी एक परब्रह्म की उपासना करो। वह हमारे समस्त कष्ट, क्लेश व दुरितों को दूर करने में समर्थ है।

ऋषि दयानन्द का पावन-सन्देश यही है कि हम सत्य-अर्थ के प्रकाश में जिएं। समुल्लास में जिएं। हमारे जीवन में परमेश्वर के प्रति अटूट श्रद्धा, विश्वास व निष्ठा हो। हम उस परमेश्वर को जिस का निज नाम 'ओ३म्' है, जिसे ओङ्कार, उदगीथ व प्रणव कहा गया है उसे सर्वत्र व्यापक जानकर हम उसकी उपासना-स्तुति व प्रार्थना करें, क्योंकि उससे बड़ा महान् इस जगत् में कोई भी नहीं है। सन्तों, विप्रों, ज्ञानीजनों और गुरुजनों के प्रति हम प्रगाढ-श्रद्धावान् बनें, क्योंकि बिना श्रद्धा के ज्ञान-

विवेक की प्राप्ति असम्भव है, '**श्रद्धया सत्यामाप्यते, श्रद्धया विन्दते वसु**' श्रद्धा से ही सत्य पाया जाता है। बिना श्रद्धा के पाया हुआ 'ज्ञान' बोझ बन जाता है थोथा पाण्डित्य बन कर रह जाता है और धन भय का असुरक्षा का कारण बन जाता है। जो धन या ज्ञान बिना श्रद्धा भक्ति के या बिना सेवा-समर्पण के पाया जाता है-वह 'धन' शान्ति सुख का नहीं बल्कि अशान्ति व दु:ख का कारण बन जाता है। इस लिए 'वेद' हमें सदा सावधान करते हैं कि हम सुपथ से ऐश्वर्य को प्राप्त करें।

अग्ने नय सुपथा राय...यजुर्वेद ४०/२६

हमने एक परमेश्वर के स्थान पर अनेक देवी देवताओं को अपने तुच्छ स्वार्थों के चलते खड़ा कर लिया है- तब, देव दयानन्द हमें वेदों के उस पावन सन्देश को सुनाते हैं-

'**एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति**' वह एक है उस एक ही ईश्वर को विप्रजन, बहुत-बहुत नामों से पुकारते हैं। वह एक ही है। उसी को हम ब्रह्मा, विष्णु व महेश कह कर पुकारते हैं- "**एक एव जनार्दन:**" परमात्म का एक ही है "**जीव अनेक एक भगवन्ता**" (मानस) जीव अनेक हैं और भगवान् एक है।

वेद आर्यजाति के प्राण हैं। ये मानव मात्र के लिए प्रकाश स्तम्भ हैं। विश्व को सभ्यता और संस्कृति का ज्ञान देने का श्रेय वेदों को है। वेद ही विश्व-बन्धुत्व, विश्व कल्याण और विश्व-शान्ति के प्रथम उद्घोषक हैं। वेदों से ही आर्य संस्कृति का विकास हुआ है, जो विश्व को धर्म, ज्ञान, विज्ञान, आचार-विचार और सुख-शान्ति की शिक्षा देकर उसकी समुन्नति का मार्ग प्रशस्त करती है।

वेदों के विषय में मनु महाराज का यह कथन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है कि 'सर्वज्ञानमयो हि स:।' (२/७) अर्थात् वेदों में सभी विद्याओं के सूत्र विद्यमान हैं। वेदों में जहाँ धर्म, दर्शन, विज्ञान, आचारशास्त्र, नीति शास्त्र, आयुर्वेद, राजनीति शास्त्र, समाज शास्त्र, अर्थशास्त्र आदि से सम्बद्ध सामग्री प्रचुर मात्रा में मिलती है, वहां दर्शनशास्त्र और अध्यात्म से सम्बद्ध सामग्री भी सैकड़ों मन्त्रों में प्राप्य है।

वेदों के विषय में आर्यों का यह परम्परागत विश्वास चला आ रहा है कि वह ईश्वरीय ज्ञान है। परम कारुणिक सर्वज्ञ भगवान् ने मनुष्य मात्र के कल्याणार्थ मानव सृष्टि के प्रारम्भ में यह पवित्र ज्ञान अग्नि, वायु, आदित्य, अङ्गिरा संज्ञक चार ऋषियों के पवित्र अन्त:करणों में प्रकाशित किया। जिससे सब मनुष्यों को वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रीय तथा विश्व विषयक सब कर्त्तव्यों का यथार्थ ज्ञान प्राप्त हो सके और उसके द्वारा वे सुख, शान्ति तथा आनन्द को प्राप्त कर सकें।

वेद ईश्वरीय ज्ञान है। वेद वाणी आदि सृष्टि की वाणी है। वेद संसार की समसत विद्याओं का सारभूत है। जो संसार में है वह वेद में है और जो वेद में है वह संसार में है। परमेश्वर अनादि है इसी कारण उनका वेद ज्ञान भी अनादि है।

वेदों में सार्वभौम विज्ञान का उपदेश है। इनके यथावत् ज्ञान, अभ्यास और इन्द्रियों के दमन से मनुष्य सांसारिक और पारमार्थिक उन्नति की पूरी सीमा तक पहुँच जाता है। वेद-वाक्य ईश्वरोक्त होने से सत्य और प्रमाण है। मनुष्य जन्म में वेदों का अभ्यास परम तप बताया गया है। वेद एवं शास्त्र के अर्थ का तत्त्व जानने वाला पुरुष चाहे किसी आश्रम (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास) में रहे, वह संसार में रहकर भी मोक्ष अर्थात् परमानन्द पद के योग्य बन जाता है।

चारों वेद सामान्यतया सार्वलौकिक सिद्धान्तों से परिपूर्ण होने के कारण मनुष्य मात्र और समस्त संसार के लिए कल्याणकारक है। यथार्थ में परमपिता ने संसार की भलाई के लिए सृष्टि के आदि में अपने अटल नियमों को चारों वेदों के द्वारा प्रकाशित किया। चारों वेद सांसारिक व्यवहारों की शिक्षा से परमात्मा के ज्ञान का और परमात्मा के ज्ञान से सांसारिक व्यवहारों का उपदेश करते हैं। इन्हें त्रयी विद्या अर्थात् तीनों विद्याओं का भण्डार कहते हैं,

जिनका अर्थ **परमेश्वर के कर्म**, उपासना और ज्ञान से संसार के साथ उपकार करना है। इस प्रकार वेद सम्पूर्ण ज्ञान का भण्डार है।

वेद शब्द '**विद ज्ञाने**' अर्थात् जिससे वा जिसमें विविध विद्यायें जानी जाती हैं- वह वेद है। '**विदलृ लाभे**' जिससे वा जिसमें विविध विद्याओं का लाभ (प्राप्त) होता है- वह वेद है। '**विद सत्तायाम्**' अर्थात् जिससे वह जिसमें विविध ज्ञान-विज्ञानों की सत्ता का बोध होता है- वह वेद है। 'विद विचारणे:' अर्थात् जिससे वा जिसमें विविध सत्य-विद्याओं का विचार किया जाता है वह वेद है। 'वेद चेतन-आख्यान निवासेषु' अर्थात् जिसमें गुरु द्वारा अन्तेवासी शिष्यों को चेताया-जगाया जाता है, जिससे वा जिसमें विविध विषयों का आख्यान-व्याख्यान किया जाता है एवं जिससे शिष्यों के अन्तर्हृदय में अध्यात्म आदि विद्याओं का वास किया जाता है-वह वेद है।

'वेद' मनुष्यता की आदि कसौटी है। 'वेदोऽखिलो धर्ममूलम्' मानव सृष्टि के आरम्भ में जो सर्वप्रथम धर्मग्रन्थ है- वह वेद है। मानव जीवन के हर आयाम का दिग्दर्शन कराने वाला ग्रन्थ वेद है। 'वेद' वह धर्मशास्त्र है जिसमें मनुष्य के हर श्रेष्ठ पहलू का व्याख्यान है। 'वेद' वह मानव धर्मग्रन्थ है जिसमें मनुष्य के शरीर और आत्मा, इहलोक और परलोक, अभ्युदय और नि:श्रेयस, भौतिक और आध्यात्मिक दोनों का ही सम्यक् समन्वय है। जीवन की जो वयाख्या वेदों में उपलबध है वह अद्गीुत व अनूठी है। विश्व के किस भी कोने में जो भी महत्त्वपूर्ण सूत्र कहे गये हैं- उन सबका आदि मूल वेद है।

वेद समूची मानव जाति का संविधानपरक आधार स्रोत है जिसमें जीवन और जगत् से जुड़े ज्ञात तथा अज्ञात सभी प्रकार के सार्वभौमिक सृष्टि सम्मत ज्ञान का प्रवाह निरनतर प्रवाहित होता रहता है। वेदों में निहित ईश्वरीय ज्ञान सृष्टिक्रम के अनुकूल है। परमात्मा जहाँ इस सारी प्राकृतिक सृष्टि का कर्ता है वहाँ परमात्मा की इस सृष्टि में सर्वत्र एक क्रम पाया जाता है। सर्वत्र एक नियम एवम् व्यवस्था का तारतम्य है, वेद इस नियम के नियामक ग्रन्थ हैं। वेदों में मनुष्य उपयोगी भाँति-भाँति की विद्यायें, हैं, इन विद्याओं के मौलिक सिद्धान्त वेदमन्त्रों में निहित हैं, वेद साधक के लिए नितान्त आवश्यक हैं, वह ईश्वर की आराधना में अपने का संयुक्त करके इस बोध का अनुभव करे। परमात्मा की भक्ति से ओतप्रोत होकर जगत् कल्याण के लिए इन तत्त्वों का उद्घाटन करे। वेद के व्याख्याता को तपस्वी, संयमी, पवित्र जीवन वाला और ईश्वर का श्रद्धालु होना चाहिये, ये गुण वेदमन्त्रों के भावों को समझने में बहुत सहायता प्रदान करते हैं। वेद परमात्मा की वाणी है, वेद में परमात्मा ही सबका माता-पिता, जनक, बन्धु तथा रक्षक बतलाया गया है।

वेद : सभ्यता का प्रवेश द्वार

वैदिक युग मानव सभ्यता का प्रवेश द्वार है। वेद केवल मन्त्रों और प्रार्थनाओं का साहित्य नहीं है, अपितु वह मनुष्य के छोटे से छोटे और बड़े से बड़े खोजपूर्ण अभियानों का गुप्त दस्तावेज भी है। आदि काल के भौतिक जीवन में मनुष्य को जो जो संघर्ष करने पड़े उस दौर की मनुष्य की समस्या की गहराई समझ पाना सरल नहीं है। आज हमारी कठिनाई है कि ढँके हुए मानव शास्त्र को अब तक पूरी तरह कोई खोलकर भी नहीं देख पाया। ब्राह्मणों, आरण्यकों, उपनिषदों और धर्मसूत्रों में प्रयत्न तो दिखाई देते हैं, परन्तु वे भी पूरी तरह से सफल नहीं कहे जा सकते।

वैदिक ऋषियों के पास केवल अपनी भाषा ही नहीं थी, अपना मौलिक प्रतीक शास्त्र भी था। उस प्रतीक शास्त्र को खोलने की कुन्जी खोज तो ली गई, किनतु खोलने की विद्या इतनी सहज भी नहीं। वैदिक ऋषियों ने वह छन्द विद्या कहाँ से प्राप्त की, जो विश्व साहित्य की समझ रखने वालों को आज भी आश्चर्य में डाल देती है। एक गायत्री छन्द के ही इतने भेद-प्रभेद मिलते

हैं कि बहुत थोड़े अन्तर से छन्द की भंगिमा ही परिवर्तित हो जात है। वेदों की खोज में परिवार के परिवार शब्द की साधना में लगे हुए दिखाई पड़ते हैं। एक-एक मन्त्र की रक्षा में जीवन खपा देने वाले ऋषि पुत्रों का बड़ा भारी योगदान है भारतीय संस्कृति में।

वेद को अपौरुषेय कहा जात है। वह सर्वोच्च ज्ञान है, जो धरा पर अवतरित हुआ। किन्तु यह अतिशयोक्ति नहीं कि यह अवतरण ऋषियों की अहोरात्र कठिन तपस्या का परिणाम है। यह परिणाम एक कुम्भ के रूप में है, जो ऋत और सत्य के अमृत से भरा होने के कारण एकदेशीय नहीं है, एककालिक नहीं है, अपितु सनातन और नित्य है। यह कहने में कोई संकोच नहीं कि विगत हजारों वर्षों से जितने भी वेदभाष्य हुए वे बहुत निष्ठा और समर्पण से लिखे गये, किन्तु कोई भी भाष्य किसी एक मन्त्र के भीतर तक झाँक कर पूरी तरह नहीं देख पाया। ऋग्वेद के तृतीय मण्डल के ६२वें सूक्त की केवल एक ऋचा (१०वां मन्त्र) जो बाद में लोकप्रसिद्ध गायत्री मन्त्र के रूप में पहचानी गई, अब भी पूरा तरह अनावृत नहीं है, तब २० हजार से अधिक वैदिक ऋचाओं की तो बात ही क्या? सब भाष्यकारों ने अपनी समझ और अपने समाज की आवश्यकता और समकालीन शास्त्र के तय मापदण्डों के अनुसार ही भाष्य लिखे। इन महान् भाष्यकारों का योगदान अमूल्य है, किन्तु वेदार्थ अब भी स्वर्णपात्र में ढँका हुआ है।

वैदिक ऋषि पृथ्वी के अमृतपुत्र हैं। वे "**माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः**" कहते हुए अपना पहचान-पत्र प्रस्तुत करते हैं। वे पृथ्वी की ओर से निवेदित होना जानते हैं। वे वैदिक ऋषि ही थे, जिन्होनें दो अरणियों के घर्षण से अग्नि को उत्पन्न किया। उनकी दृष्टि में अग्नि पृथ्वी का देवता है। सब जानते हैं कि अग्नि के आविष्कार के साथ ही मानव सभ्यता का नया युग आरम्भ होता है। मधुछन्दा ऋषि हम सबकी ओर से वेदमन्त्र द्वारा अग्नि से प्रार्थना करते हैं-

"**अग्नि मीळे पुरोहितं यज्ञेस्य देवमृत्विजं। होतारं रत्नधातमम्**" यह ऋग्वेद के पहले सूक्त की पहली ऋचा है। अग्नि जातवेदा है, अन्तरिक्ष और द्युलोक के देवताओं के सम्पर्क सूत्र अग्नि के ही पास में है, इसलिये वैदिक ऋषि सबसे पहले अग्नि की शरण में है। ऋषि अग्नि अपने पिता के रूप में देखता है, घर आये प्रथम अतिथि के रूप में देखता है, परन्तु ऋषि यही नहीं ठहर जाता। वह स्थूल अग्नि से चलकर सूक्ष्म अग्नि के घर पर जा खड़ा होता है। वह उस शाश्वत और चिरन्तन अग्नि का साक्षात्कार कर लेता है, जिसकी प्रदक्षिणा करती हुई विश्व की सांस्कृतिक चेतना युगों-युगों से उस अभियान में दिखाई पड़ती है, जो '**कृण्वन्तो विश्वमार्यम्**' के उद्घोष के साथ '**चरैवति चरैवेति**' में विश्वास रखता है।

ऋचाओं की बहती हुई नदी

दिनभर में एक न एक बार वेद के पास जाना होता है। प्रत्येक बार ऐसा लगता है कि मैं डुबकी लगने के लिए किसी नदी पर जा रहा हूँ, जहाँ मल-मल कर नहाऊँगा और लौटूँगा तो सबको बताऊँगा कि आज कितना आनन्द आया, नदी से क्या-क्या बातें हुई? वेद बहुत ही पवित्र नदियाँ हैं- ऋचाओं की बहती हुई नदियाँ। यह निरनतर प्रवाह में है। इसे बीच मे से कहीं भी छू लो, छूते ही रंग-बिरंगा प्रकाश मन में उतरने लगता है। ऐसाकई बार लगा कि माँ मेरे साथ है और वह मुझे उंगली पकड़ कर थोड़ी दूर तक नदी के साथ बहती चली जा रही है और हम दोनों फिर तट पर आ गये हैं और बहती हुई नदी को देख रहे हैं।

ऋचाओं की इस नदी के दोनों किनारे बहुत ऊँचे-ऊँचे हैं। कहीं-कहीं स्वर्ण की घाटियाँ सी दिखाई पड़ती है और कहीं शीतल स्फटिक के शिखरों की ऊँची-ऊँची शृंखलायें ध्यान लगा कर देखो, तो इनके बीच-बीच आरोहण करते हुए ऋषि परिवार दिखाई पड़ जाते हैं जो एक साथ कुछ खोजने निकले हुए हैं। दसों दिशाओं में

अखण्ड शान्तिनाद गूंजता रहता है। वह इतना धीमा, इतना मधुर लगता है कि विश्व के महान् शास्त्रीय गायकों का समूह कहीं दूर अन्तरिक्ष में बैठकर गा रहा है।

ऋचाओं की यह नदी अनन्तकाल से बह रही है। इसका उद्गम ब्रह्म ही है, इसलिए तो वेदों को ब्रह्मा का विश्वास कहा जाता है। इस नदी के उद्गम स्थल तक पहुँचने वाले ऋषियों के नाम हम जानते हैं। हम कितने भाग्यशाली है कि वे हमारे पूर्वज है। वे वसिष्ठ हो, विश्वामित्र हों, अंगिरा हो, कण्व हो, भारद्वाज हो, वे ब्रह्मज्ञानी थे तो इसी अर्थ में उन्होंने ऋचाओं की इस बहती हुई नदी का उद्गम ढूंढ लिया था। कहते हैं कि इन ऋषियों ने दुर्धर्ष तप किया था। वे यज्ञ के सहारे-सहारे वहाँ तक पहुँचे थे, जहाँ उन्होंने देखा कि ऋत और सत्य की वल्कल पहने हुए शब्द ब्रह्म घोर तपस्या में लीन है और उसके मधुर निःश्वास प्रकाश से ओत-प्रोत है।

ऋचाओं की यह नदी अब भी बह रही है। यह नदी हमें बुलाती है कि 'आओ अमृत पुत्रो! मुझ से लिपट जाओ।' इस नदी में कीचड़ नहीं इसलिए इसमें किसी के पाँव नहीं धँसते। अभी तक इस नदी में कोई डूब कर नहीं मरा। इस नदी में ऐसी बाढ़ नहीं आई कि बस्तियां उजड़ गई हों। यह प्रेम और प्रकाश से भरी हुई है। इस नदी में सपर्मण और अभीप्सा की वे नौकाएँ चलती है, जिनमें बैठकर हमारे पूर्वज मनीषी गन्तव्य तक पहुँचे। यह मृत्यु के बन्धनों को काट कर अमरता के आलोक का पथ दिख्खाने वाली नदी है। यह थोड़ी सी गुप्त है, एकदम दिखाई नहीं देती, परन्तु आपका संकल्प शिव हो तो यह बहती हुई आपको प्रत्यक्ष हो जाये और आप ज्योति से भरा हुआ कलश लेकर नये जीवन में पदार्पण करें।

सत्यार्थप्रकाश तो एक महान् ग्रन्थ है, दूसरे शब्दों में वैदिक धर्म, मतमतान्तर एवं ज्ञान-विज्ञान का विश्व कोष है। – पं. युधिष्ठिर मीमांसक

परोपकारिणी सभा अजमेर के नवीन प्रकाशन
रियायती मूल्यों पर महर्षि दयानन्द सरस्वती की
२००वीं जन्म-जयन्ती शताब्दी समारोह के
उपलक्ष्य में ५० प्रतिशत की छुट

पुस्तक का नाम	वास्तविक मूल्य रुपये
विवाह पद्धति	२०
शिक्षापत्रीध्वान्त निवारण	०२
वेदान्तिध्वान्त निवारण	०२
समाधी	१००
सामवेद शतक	३०
जिज्ञासा विमर्श	१००
इतिहास प्रदूषण	१००
इतिहास साक्षी	५०
वेदामृत	५०
सत्यासत्य निर्णय	२५
The Book of Prayer	35
Kashi Debate	20
A Critique of Swami Naryan Seet	20
An Examination of Vallabh Seet	20
Five Great Rituals of The Day	20
Bhramaccheden	25
Bhranti Nivarana	35
Atmakatha	20
Gokarunanidhi	12
Dayanand Interparetation of Vedas	05
संध्या सुरभि कलेण्डर	३५
महर्षि दयानन्द की शिक्षाएँ कलेण्डर	२५
The Pre Islamic Religious of Arabia	20
वेदमाता	१००
शंका समाधान	७०
ईश्वर	१५०
नवयुग की आहट	६०
वैदिक इस्लाम	१०
पं. आत्माराम अमृतसरी	१००
इतिहास बोल पड़ा	१००
मृत्यु सूक्त	२००
सत्यार्थ सुधा	१५०

पुस्तकों हेतु सम्पर्क करें:-
दूरभाष-0145-2460120,चलभाष- 7878303382

आर्यों का भावी एजेण्डा

आर्यों का सार्वभौम चक्रवर्ती साम्राज्य

डॉ. महावीर मीमांसक

आर्यसमाज सन् २०२४ को ऋषि दयानन्द के २००वीं जन्मशताब्दी के रूप में मना रहा है। मुझे नहीं मालूम कि इन वर्षों में आर्यसमाज की मूर्द्धन्य संस्था-सार्वदेशिक सभा, आर्य प्रतिनिधि सभा और परोपकारिणी सभा (ऋषि दयानन्द की उत्तराधिकारिणी सभा) ने किन कार्यक्रमों का निर्धारण करके पूरा करने की योजना बनाई है? अन्तराष्ट्रीय आर्य महासम्मेलन तो प्रति वर्ष पहले से ही निर्धारित है जो प्रतिवर्ष विश्व भर के किसी न किसी देश में होते रहते हैं। किन्तु उन अन्तर्राष्ट्रीय महासम्मेलनों में किन कार्यों को पूरा करने का बीड़ा उठाया जाता है, मुझे मालूम नहीं? किन्तु ऐसे अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों का प्रतिवर्ष किसी न किसी देश में आयोजन प्रशंसनीय है जिसका समर्थन और सहभागिता प्रत्येक आर्य को करना चाहिये।

मैं आर्यसमाज के सभी नेताओं, सभी विद्वानों, संन्यासियों और सम्पूर्ण आर्यजगत् का ध्यान एक ऐसे तथ्य की ओर दिलाना चाहता हूँ जिसे आर्य बन्धु भूल रहे हैं या उपेक्षा कर रहे हैं। यद्यपि आर्यसमाज के सभी कार्यक्रमों में अपने मिशन के रूप में किसी न किसी भाषण, प्रवचन में आर्यसमाज के महान् उद्देश्य को वेद के शब्दों में कृण्वन्तो विश्वमार्यम् कहकर याद तो अवश्य किया जाता है किन्तु कृण्वन्तो विश्वमार्यम् की क्रियात्मक व्याख्या जो ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश के ग्यारहवें सम्मुलास में की है उसे कभी भी घोषित नहीं किया और वह है आर्यों का सार्वभौम चक्रवर्ती साम्राज्य। इसी मिशन की क्रियात्मक पूरक व्याख्या है।

सत्यार्थप्रकाश का छठा समुल्लास जिसका उद्घाटक श्री गणेश अभी तक नहीं हुआ है, जो अभी तक लिफाफे में सील लगा हुआ बन्द है, जिसको विषय बनाकर कुछ एक शोधार्थी छात्रों या विद्वानों ने कुछ संक्षिप्त लिखा है।

कौनसा ऐसा विषय है जिस पर ऋषि ने सत्यार्थप्रकाश में स्पष्ट प्रमाणों और अकाट्य तर्कों के साथ नहीं लिखा है? सभी प्रकार के धार्मिक अन्धविश्वास सामाजिक कुरीतियां और भिन्न-भिन्न स्थानीय परम्पराओं को गिन-गिन कर ऐसे चीरफाड़ करके निकाल फेंका कि समाज का शरीर पूर्ण रूप से स्वस्थ सकल और शुद्ध होकर जैसे नवजीवन कर लिया हो। यह सर्वाङ्गीण क्रान्ति की गूंज विदेशों तक गई और विदेशों से यह सन्देश भारत में आया कि मैं भारत में एक ऐसी ज्वाला जलती हुई देख रहा हूँ जो विश्व भर की समस्त सब प्रकार की गंद को भस्मसात कर देगी। वेदों का भाष्य प्रारम्भ करके ऋषि ने उद्घोष किया था कि मेरा वेदभाष्य पूरा होने पर विश्व में ज्ञान का प्रकाश फैलेगा। प्राचीन आर्ष शिक्षा प्रणाली का विस्तृत विवरण लिख कर ऋषि ने बड़े विश्वास से सन्तोष की सांस लेकर आशा की थी कि अब लार्ड मैकाले की शिक्षा प्रणाली पर विराम लगेगा और गुरुकुलों द्वारा आर्ष शिक्षा प्रणाली का प्रचलन होगा। स्त्री शूद्रौ नाधीयाताम् की मान्यता पूर्णतः खण्डित होगी, महिला शक्ति पुनः सञ्चित होगी और अछूत समझा जाने वाला सामाजिक शरीर का महत्त्वपूर्ण अंग समाज में पुनः अपना समान अधिकार प्राप्त करेगा। इत्यादि इत्यादि।

इतना ही नहीं, सत्यार्थप्रकाश लिखने के अतिरिक्त सन् १८७५ में ही ऋषि ने आर्यमसाज की स्थापना की जिस आर्यसमाज का जाल सारे देश में तथा विदेशों में शीघ्र फैल गया। सन् १८८३ में अपने निर्वाण से पहले अपनी उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा की स्थापना की। इसी सत्यार्थप्रकाश के ग्यारहवें समुल्लास में आर्यो को भारत की गरिमा याद दिलाते हुवे ऋषि ने लिखा "सृष्टि से ले के पांच सहस्र वर्षों से पूर्व समय पर्यन्त आर्यों का सार्वभौम चक्रवर्ती" अर्थात् भूगोल में सर्वोपरि एकमात्र राज्य था।" ऋषि दयानन्द के क्रान्तिकारी कार्यों

का विवरण देने के लिये इतिहास के अनेक भागों में बृहद् ग्रन्थों के अनेक भाग बन जायें तो भी विवरण पूरा न हो पाये। इतने कार्य ऋषि ने अपने छोटे से जीवनकाल में कर दिखाये।

ऋषि के इन क्रान्तिकारी कार्यों का परिणाम भी अद्भुत रहा। समूचा ब्रिटिश साम्राज्य हिल गया, देश में अकल्पनीय परिवर्तन हुवे, सभी धार्मिक अन्धविश्वासों का ऋषि ने चुन-चुन कर खण्डन किया गर्हित सामाजिक परम्पराओं को जड़ से उखाड़ फेंका और शास्त्र के नाम पर प्रचलित भ्रान्त धारणाओं की ऐसी चीरफाड़ की कि उनका नामोनिशान तक मिट गया। भिन्न-भिन्न धर्मों (पन्थों) में प्रचलित अन्धविश्वासों का खण्डन करने के लिये ऋषि ने सत्यार्थप्रकाश में योजनाबद्ध तरीके से लिखा। सर्वप्रथम हिन्दु धर्म में प्रचलित पौराणिक तथा अन्य अन्धी परम्परागत मान्यताओं का खण्डन सत्यार्थ प्रकाश के ग्यारहवें समुल्लास में किया। बौद्ध और जैन मत की तर्कहीन मान्यताओं को १२वें समुल्लास में और यवनमत की मान्यताओं की बखिया ऋषि ने सत्यार्थप्रकाश के अन्तिम १४वें समुल्लास में उधेड़ी।

हिन्दू धर्म (पौराणिकों) की सबसे गर्हित और समाज को तोड़कर टुकड़े-टुकड़े करने वाली सबसे गर्हित औरखतरनाक मान्यता थी, ''स्त्री शूद्रों नाधीयाताम्'' अर्थात् स्त्री और शूद्रौ को पढ़ने (वेद) का निषेध है।

ऋषि दयानन्द ने वैदिक प्रमाण ''यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्य:'' इत्यादि वैदिक प्रमाण देकर सिद्ध किया कि स्त्री और शूद्र (निम्न वर्ग) के सभी लोगों को अध्ययन (वेदादि शास्त्रों) का अधिकार का विधान वेद स्पष्ट शब्दों में करता है। यह भी महिला शक्ति और जन शक्ति को संगठित करके एकसूत्र में बांधने की क्रान्ति का आन्दोलन जो ऋषि दयानन्द ने सन् १८७५ में ही सत्यार्थप्रकाश में घोषित किया। इतना ही नहीं, आर्यसमाज जिसकी नींव ऋषि ने सन् १८७५ में मुम्बई में रखी, उसके छठे नियम में घोषित किया कि ''संसार का उपकार करना, इस समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति।'' अपनी उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा में सन् १८८३ में ''अनाथों की सहायता और उनका उत्थान करना सभा का प्रथम उद्देश्य है। महिलाओं में समाज के पिछड़े वर्ग के उत्थान के लिये ऋषि ने प्रचलित प्रवृत्त किये। कृषकों (किसानों) को राजाओं का राजा उद्घोषित किया। अपने देश की स्वतन्त्रता और अपने देश का शासक राजा को विदेशियों के शासन को उखाड़ फेंकने का बिगुल ऋषि ने अंग्रेजों के शासन के विरुद्ध सत्यार्थप्रकाश में फूंका। ह्यूम नामक विदेशी व्यक्ति ने कांग्रेस की नींव तो बहुत बाद में डाली अत: अंग्रेजों के विरुद्ध स्वतन्त्रता संग्राम में भाग लेने वाले और जेलों में जाने वाले ८० प्रतिशत आर्यसमाजी थे। निजाम के विरुद्ध चलाया गया हैदराबाद सत्याग्रह पूर्णत: आर्यसमाज द्वारा चलाया गया। इन्हीं सब क्रान्तिकारी योजनाओं की घोषणा के साथ ऋषि ने आर्यों का सार्वभौम चक्रवर्ती राज्य'' नारा दिया, जो कृण्वन्तो विश्वमार्यम् की क्रियात्मक व्याख्या थी। इसी शंखनाद के नारे की पृष्ठभूमि सत्यार्थप्रकाश के छठे समुल्लास में वर्णित वो राजनीतिक सिद्धान्त हैं और उन सभी राजनैतिक सिद्धान्तों का आधार यहीं शंखनाद है जिसकी ध्वनि आर्यसमाज को सदैव जागरूक और अमर रखेगी।

ऋषि दयानन्द ने अपना मिशन केवल लेखन कार्य तक सीमित नहीं रखा, अपितु शास्त्रार्थ की प्राचीन परम्परा को भी चालू किया जो भारत के दर्शनशास्त्रों में सैंकड़ों वर्षों तक चलती रही और जो कालचक्र के चलते मृतप्राय: हो गई थी। शास्त्रार्थ एक ऐसा अमोघ अस्त्र था जो श्रोता दर्शकों पर तत्काल प्रभाव डालता था और जिसमें प्रतिद्वन्द्वी तत्काल हार मानकर निरुत्तर हो जाता था।

पाठक समझ सकते हैं कि वह युग कैसा रहा होगा जिसमें निरन्तर युक्ति तर्क और प्रमाणों के बाण चलाते थे। ऋषि दयानन्द केवल वेद को ही स्वत: प्रमाण मानते,

अन्य शास्त्र वेद के अनुकूल होने पर ही प्रामाणिक कोटि में आते थे। अत: ऋषि दयानन्द ने वेदों का भाष्य करना प्रारम्भ किया। ऋषि ने अपने वेदभाष्य की प्रामाणिकता अपनी ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में स्थापित की।

ऋषि दयानन्द के क्रान्तिकारी कार्यों का इस अत्यन्त संक्षिप्त लघु लेख में नामोल्लेख करना भी असम्भव है। ऋषि के इस अथक भगीरथ प्रयास का परिणाम यह हुआ कि आर्यमसाज न केवल भारत में ही अपितु आर्यसमाजों का जाल की तरह विस्तार सात समुद्र पार विदेशों में भी होने लगा। देश और विदेशों में ओम् की ध्वजा फहराने लगी और समूचा वातावरण ऋषि दयानन्द की जय, 'वैदिक धर्म की जय' इत्यादि गगनभेदी जयकार के नारों से गुञ्जायमान रहने लगा। यह समग्र प्रयास ऋषि के महान् मिशन ''आर्यों का सर्वभौम साम्राज्य'' की ओर बढ़ते हुये कदमों का संकेत था। ऐसे शिरोमणि देश को महाभारत के युद्ध ने गहरा धक्का दिया कि अब तक भी यह अपनी पूर्व दशा में नहीं आ सका। ऋषि का यह कष्ट सूचक वाक्य था।

ऋषि दयानन्द के क्रान्तिकारी कारनामों के प्रसङ्ग में यह भी उल्लेखनीय है कि समाज में प्रचलित श्राद्ध प्रथा, विधवाओं की दासी प्रथा और महिला तथा शूद्र कहे जाने वो श्रमिक वर्ग का मन्दिरों में प्रवेश निषेध की समाज को काटने और टुकड़े-टुकड़े में बाँटने वाली भयंकर प्रथा का तीव्र विरोध और खण्डन किया तथा समाज को टूटने से बचाकर जोड़ने की प्रबल शक्ति हिन्दू कहे जाने वाले समाज में उजागर की।

ये सभी कार्य आर्य साम्राज्य के दुर्ग की नींव (आधारशिला) रखने के थे। किन्तु वाह रे कराल काल, और देश का दुर्भाग्य! महर्षि दयानन्द महाराजा जोधपुर के यहां रहते हुए वेदभाष्य कर रहे थे। एक दिन महर्षि ने महाराजा जोधपुर को उनके महल में नन्हीं जान नामक वेश्या के साथ देखा। महर्षि ने तुरन्त महाराजा जोधुपर को कहा, शेरों की मांद में कुतिया का निवास! तभी से वेश्या के दिल में महर्षि को मारने का प्रबल विचार घर कर गया। वेश्या ने महर्षि के पाचक जगन्नाथ को अपने विश्वास में लेकर महर्षि को विष देने का षड्यन्त्र रचा।

पाचक जगन्नाथ ने वेश्या की योजना के अनुसार महर्षि दयानन्द को दूध में विष मिलाकर पिला दिया। विष इतना भयंकर था कि महर्षि के शरीर में फूट-फूट कर निकलने लगा। चिकित्सों की चिकित्सा भी विफल हो गई। महर्षि को जोधपुर से आबू होते हुये अजमेर लाया गया। उत्तम कोटि के माने जाने वाले चिकित्सक भी इलाज करने में विफल हो गये। महर्षि को अजमेर में भिनाय की कोठी में रखा गया सभी चिकित्सक विष की भयंकरता की और विष के कारण होने वाली भयंकर पीड़ा तथा महर्षि को ऐसी भयंकर पीड़ा में भी उफ तक न करते हुये देखकर अत्यन्त विस्मित थे। महर्षि के शरीर से विष फूट-फूट कर निकल रहा था। अन्ततोगत्वा ३० अक्टूबर सन् १८८३ का दिन आया। लाहौर से महर्षि के भक्त दर्शनार्थ आये हुये थे। सायंकाल का समय था। महर्षि ने सब भक्तों को अपने कमरे से बाहर जाने को कहा केवल एक नवयुवक को अपने पास रखा जिसका नाम था गुरुदत्त। गुरुदत्त महर्षि का कट्टर भक्त होते हुये भी नास्तिक था। सूर्य अस्त होने को आया, वह दीपावली का दिन था। महर्षि ने अपने अन्तिम समय में कहा प्रभो! तुम ने अच्छी लीला की तेरी इच्छा पूर्ण हो। यह कहते हुये महर्षि ने निर्वाण किया। समूचा देश दीपावली के दीपों से प्रकाशित हो गया किन्तु विश्व का एक महान् सूर्य अस्त हो गया! गुरुदत्त महर्षि की इस अन्तर्वासी (शब्दावली) को सुनकर और महर्षि की इस अन्तिम अवस्था को देखकर मानो जाप से इतने प्रभावित हुये कि कट्टर नास्तिक से कट्टर आस्तिक बन गये। ऋषि के मिशन को पूरा करने का गुरुदत्त ने बीड़ा उठा लिया। अब वे पं. गुरुदत्त विद्यार्थी बन गये, ऋषि के मिशन को पूरा करने की धुन में मानो पागल हो गये हों। उनके मिशन का अन्तिम पड़ाव वही था, आर्यों का सार्वभौम चक्रवर्ती साम्राज्य अर्थात् ''कृण्वन्तो विश्वमार्यम्'' अथवा समग्र क्रान्ति।

महर्षि को समर्पित व्यक्तित्व धर्मवीर श्री पं. लेखराम

डॉ. ज्वलन्तकुमार शास्त्री

जन्म-०८ चैत्र संवत् १९१५ (१८५८ ई.)। पिता-पं. श्री तारासिंह, माता-श्रीमती भागभरी देवी। सारस्वत ब्राह्मण, ग्राम-सैदपुर, जिला-झेलम (पश्चिमी पंजाब) उर्दू और फारसी का विशेष अध्ययन। पं. लेखराम ने फारसी में एक पुस्तक भी लिखी है, फारसी में बीसियों कवितायें लिखीं। 'कुलियाते आर्य मुसाफिर' में ही उनके स्वरचित सैकड़ों फारसी पद्य छपे मिलते हैं। बाद में स्वाध्याय से हिन्दी तथा कामचलाऊ संस्कृत व अंग्रेजी भी सीखी। प्रारम्भ में मूर्तिपूजा भी करते थे। भक्तिभाव से जपजी का पाठ किया, कभी बाइबिल का भी। रुग्ण होने पर कब्रों पर जाकर माथा भी टेका, क्योंकि नास्तिकता के विचार से हृदय घबड़ाता था। एक पत्रिका से ऋषि दयानन्द के बारे में पता चला। स्वामी जी का सम्पूर्ण साहित्य मँगवाया। मन को शान्ति मिली। सम्पूर्ण भ्रमों का निवारण हुआ। सच्चे आस्तिक बन गये।

वैदिक धर्म में प्रवेश

११ अप्रैल १८८१ को पूरी तरह वैदिक धर्म के सिद्धान्तों पर निष्ठा जम गई। ऋषि दयानन्द से मिलने का निश्चय किया। १६ मई १८८१ को अजमेर पहुँचे, ऋषि के दर्शन हुए। मार्ग के सारे कष्ट भूल गये, ऋषिवर से १० प्रश्न किये, जिनमें उन्हें तीन प्रश्न ही बाद में ऋषि दयानन्द का जीवन चरित्र लिखते समय स्मरण रहे।

प्रश्न- १. आकाश भी व्यापक है और ईश्वर भी। दोनों व्यापक एक साथ इकट्ठे कैसे रह सकते है?

उत्तर- ऋषि ने सामने पड़े एक पत्थर को उठाया और कहा-इसमें अग्नि, वायु आदि व्यापक है कि नहीं? जो वस्तु जिससे सूक्ष्म होती है, वह उसमें व्यापक होती है। आत्मा, आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी इसमें उत्तरोत्तर स्थूलता है। ये अपने से पूर्व-पूर्व में व्यापक हैं। इसी प्रकार आकाश से भी ब्रह्म सूक्ष्म है, अतः ब्रह्म में आकाश व्यापक है। इसलिए वायु आदि में आकाश और ब्रह्म दोनों व्यापक हैं। ''आत्मनः आकाशः सम्भूतः आकाशाद् वायुः, वायोरग्निः, अग्नेरापः, अद्भ्यः पृथिवी'' यहाँ आत्मा शब्द ब्रह्म वा परमात्मा का वाचक है-'अतति सर्वत्र व्याप्नोतीति आत्मा।'

प्रश्न- २. ब्रह्म और जीव की भिन्नता में क्या प्रमाण है?

उत्तर- ऋषि ने कहा कि यजुर्वेद का ४०वाँ अध्याय जीव और ब्रह्म का भेद बतलाता है।

प्रश्न- ३. अन्य मत के लोगों को शुद्ध करना चाहिए वा नहीं?

उत्तर- अवश्य शुद्ध करना चाहिए।

पं. लेखराम ऋषि के पास एक सप्ताह रहे। २४ मई १८८१ को चलते समय ऋषि ने स्मृति के लिए पं. लेखराम द्वारा कुछ मांगने पर अष्टाध्यायी की एक प्रति दी। साथ ही २५ वर्ष से पूर्व विवाह न करने को कहा। लेखराम जी विवाह करना ही नहीं चाहते थे। रिश्तेदारों तथा पारिवारिकजनों के आग्रह पर ३५ वर्ष की अवस्था में विवाह किया। पण्डित जी की पत्नी लक्ष्मी देवी में धर्म-भाव कूट-कूट कर भरा था। देवी ने पं. लेखराम जी के बलिदान हो जाने पर गुरुकुल काँगड़ी के उत्सव पर अपील होने पर पण्डित जी के बीमा से प्राप्त राशि दान कर दी। महात्मा मुंशीराम तथा चौधरी रामभजदत्त ने बहुत समझाया, परन्तु देवी अपने निश्चय पर अटल रही। इस दानराशि से गुरुकुल में एक स्थिर निधि स्थापित हुई, जिससे एक छात्र को छात्रवृत्ति मिली। इस छात्रवृत्ति से जो प्रथम स्नातक बने, वे थे अद्भुत प्रतिभा के धनी शास्त्रार्थ महारथी पं. श्री बुद्धदेव विद्यालंकार (स्वामी समर्पणानन्द सरस्वती)।

धर्म और कर्म

एक बार पण्डित जी लुधियाना से जगराँव जा रहे थे। मार्ग में जल लेकर शौच गये। लौटने पर पता चला कि हाथ-पैर धोने, स्नान आदि के लिए जल नहीं है। पण्डित जी छत पर चढ़े और सन्ध्या में निमग्न हो गये। बाद में किसी ने पूछा- पेशावरी सन्ध्या हो गई। पण्डित जी ने कहा कि स्नान कर्म है, जलाभाव में हुआ न हुआ, कोई बात नहीं। किन्तु सन्ध्या धर्म है और उसका न करना पाप है।

अन्दर और बाहर के कपड़े

एक बार पण्डित जी प्रचार करते हुए जालन्धर आये। वर्षा के कारण कपड़े भीग गये और वह मैले भी चुके थे। पण्डित जी ने महात्मा मुन्शीराम से उजले साफ वस्त्र माँगे। उन्होंने दे दिये। पण्डित जी ने महात्मा जी का दिया हुआ धुला कुर्ता तो नीचे पहन लिया और उसके ऊपर अपना मैला कुर्ता पहन कर चल पड़े। महात्मा जी ने देखा तो पूछा यह क्या? पण्डित जी ने कहा- शरीर के साथ लगने वाला वस्त्र स्वच्छ होना चाहिए। मैले कपड़े पहनने से व्यक्ति रुग्ण हो होता है। लोग क्या कहेंगे इसकी मुझे चिन्ता नहीं है। वे यही तो कहेंगे कि मैले कपड़े पहन रखे हैं।

अद्‌भुत ऊहा के धनी

आर्यसमाज के विद्वान् शास्त्रार्थ महारथी लोग मूर्तिपूजा के विरोध में 'न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यश:।' मन्त्र को उद्‌धृत करते हैं और पद पाठ में नातस्य को दो पद मानकर मूर्तिपूजा का खण्डन करते हैं। किन्तु इस मन्त्र को मूर्तिपूजा के पक्ष में पौराणिक पं. प्रीतमदेव जी ने १८९० ई. में जलालपुर में पं. लेखराम के समक्ष रखा और कहा 'न। तस्य' दो अलग-अलग पद नहीं है। अपितु 'नतस्य' एक पद है जिसका अर्थ होता है- नतस्य = नम्रीभूत भक्तवत्सल प्रभु की प्रतिमा अर्थात् मूर्ति होती है। तब पं. लेखराम जी ने उत्तर में कहा- यदि इस मन्त्र में 'न' पद से 'तस्य' पद पृथक् नहीं है। तो आगे का 'यस्य' पद या शब्द किसके लिए आया है?[२] [यत्तदोर्नित्य-सम्बन्ध: ज्वलन्त शास्त्री] पं. लेखराम के इस बेजोड़ तर्क और मौलिक सूझ पर पण्डित निरुत्तर हो गया। पं. लेखराम जी की इस ऊहा पर पं. युधिष्ठिर मीमांसक कहा करते थे कि पं. लेखराम में पूर्व जन्म से प्राप्त विद्या का प्रबल संस्कार था।

पुत्र की मृत्यु

१८ मई सन् १८९५ ई. को पण्डित जी को पुत्र-रत्न की प्राप्ति हुई। नाम रखा गया-सुखदेव। २८ अगस्त १८९६ को सुखदेव का जालन्धर में निधन हो गया। २६ अगस्त को पण्डित जी शिमला से जालन्धर आये थे। स्वामी श्रद्धानन्द ने लिखा है- ''पुत्र की मृत्यु के समय पण्डित जी की सहन शक्ति का चमत्कार देखा। पत्नी को घर पहुँचा कर दो दिन बाद वजीराबाद के वार्षिकोत्सव पर चले गये।[३] यह ठीक है कि ऐसा धीरज, इतना अटल ईश्वर विश्वास सबमें नहीं हो सकता। परन्तु जातियों, राष्ट्रों व संस्थाओं का इतिहास ऐसी-ऐसी घटनाओं से ही बना करता है। इतिहास के पृष्ठों से यदि त्याग और बलिदान की घटनाएँ निकाल दी जायें तो शेष रह ही क्या जाता है?

चलती गाड़ी से छलांग लगा दी

पण्डित जी को सूचना मिली कि कहीं पर कुछ हिन्दू मुसलमान बनने जा रहे हैं। उन्होंने झट से बिस्तर बांधा और लाहौर से चल पड़े। 'दोराहा' का टिकट लिया, जब दोराहा का स्टेशन निकट आया तो पण्डित जी अपना सामान समेटने लगे। साथ वाले यात्रियों ने कहा कि 'दोराहा' तो यह गाड़ी रुकती नहीं। वे मेल गाड़ी में यात्रा कर रहे थे। बड़ी सावधानी से बिस्तर छाती से लगा कर चलती गाड़ी से कूद पड़े। चलती ट्रेन से कूदने पर चोटें तो लगेंगी ही, लहू बहने लगा। पण्डित जी को लहू से लथपथ देखकर विधर्मी बनने जा रहे हिन्दू भाई दंग रह गये। उनके मन में यह विचार आया कि पण्डित जी ने हमारे लिए जान की बाजी लगा दी, इससे वे लोग बहुत प्रभावित हुए, एक भी व्यक्ति अपने

हिन्दू धर्म से च्युत नहीं हुआ। पण्डित जी यहाँ से रोपड़ गये, वहाँ नौका से उतरे तो आर्यों ने हाथ पर पट्टी का कारण पूछा तो पण्डित जी ने सारी बात बता दी। आर्य लोग उन्हें लाला लछमनदास जी सहायक सर्जन के पास ले गये। कुछ दिन उनकी चिकित्सा से पण्डित जी ठीक हो गये।[४]

साहित्य सर्जना

पण्डित जी ने लगभग १२ वर्ष तक धर्म प्रचार का कार्य किया। ३००० पृष्ठों की सामग्री ऋषि-जीवनी के लिए ही इकट्ठी की थी। इसका हिन्दी अनुवाद जब बड़े आकार के पुस्तक के रूप में आया तो इसमें १०४० पृष्ठ थे। इसके अतिरिक्त लेखराम द्वारा लिखित ग्रन्थों की पृष्ठ संख्या लगभग २००० है, जो अप्रकाशित सामग्री छोड़ गये उसके ९०० पृष्ठ बनते हैं।[५] पण्डित जी कृत पुस्तकों का संकलन 'कुल्लियाते आर्य मुसाफिर' नाम से (हिन्दी अनुवाद) दो खण्डों में छपा प्रथम खण्ड १९६८ ई. में तथा द्वितीय खण्ड १९७२ ई. में। इस ग्रन्थ के हिन्दी अनुवाद का कार्य मुख्यरूप से पण्डित शान्तिप्रकाश शास्त्रार्थ महारथी तथा गौणरूप से पण्डित जगत् कुमार शास्त्री ने किया।[६] मेरी दृष्टि में ऋषि दयानन्द के जीवन चरित्र के लिए पं. लेखराम का परिश्रम व कार्य सर्वातिशायी है। स्वामी श्रद्धानन्द से लेकर पं. युधिष्ठिर मीमांसक तक तथा सभी विद्वानों की एक स्वर से यही धारणा रही है कि ऋषि जीवन चरित्र का कोई भी लेखक या गवेषक लेखरामकृत 'ऋषि जीवन चरित्र' की सहायता के बिना एक पग भी आगे नहीं रख सकता।[७] बाबू घासीराम ने पं. देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय संगृहीत तथा स्वसम्पादित व लिखित ऋषि जीवन चरित की भूमिका में लिखा है-पं. लेखरामकृत 'ऋषि जीवन चरित्र' यदि प्रकाशित न होता तो अग्रिम श्रऋषि जीवनी का लिखना असम्भव हो जाता। इसके लिए हमें सदा के लिए पं. लेखराम का नितान्त आभारी रहना होगा।'[८] स्वामी श्रद्धानन्द जी के अनुसार स्वामी दयानन्द जी के बाद आर्य सामाजिक साहित्य में पं. लेखरामकृत ग्रन्थों की सर्वाधिक माँग रही है। पण्डित जी का साहित्य निष्पक्ष मुसलमान भी बड़े चाव से पढ़ते थे।[९] ऋषि दयानन्द जी द्वारा स्थापित परोपकारिणी सभी अजमेर ने सत्यार्थप्रकाश के पंचम संस्करण के सम्पादन का दायित्व पं. लेखराम को सौंपा था। पण्डित जी के निरीक्षण और शोधन के अनन्तर ५वाँ संस्करण छपा। आपने अनेक प्रमाणों के पते जो पहले उल्लिखित नहीं थे खोज कर दिये। इससे पता चलता है कि पं. लेखराम के गहन अध्ययन व विद्वत्ता की उस युग में सब पर छाप थी।[१०] पं. लेखराम की प्रेरणा से ठाकुर गोविन्द सिंह जी तथा श्री पण्डित निवास राव जी धाराशिव ने कलम्ब के पण्डित भगवती प्रसाद शुक्ल जी से ऋषि दयानन्द के पूना में दिये गये १५ प्रवचनों का हिन्दी अनुवाद करवाया।[११] यह तथ्य भी निर्विवाद है कि दण्डी स्वामी विरजानन्द का सर्वप्रथम जीवन चरित्र पं. लेखराम जी ने ही लिखा। विरजानन्द जी का जीवन चरित्र ऋषि दयानन्द की जीवनी का ही एक भाग है।[१२] बाद में वजीरचन्द जी शर्मा सम्पादक 'आर्य मुसाफिर', पं. देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय, श्री मुकुन्द दूबे, प्रो. भीमसेन शास्त्री तथा डॉ. रामप्रकाश जी ने बड़े परिश्रम से दण्डी जी की जीवनी लिखी। सभी का प्रयास पण्डित लेखराम लिखित दण्डी जीवनी के आधार पर ही सम्भव हो सका।

अब हम पं. लेखराम की पुस्तकों का पृथक्शः उल्लेख करते हैं- १. आर्य, हिन्दू और नमस्ते की तहकीकात, इसका हिन्दी अनुवाद पं. रामविलास शर्मा ने किया और यह 'भारतोद्धारक' मासिक, मेरठ के १८९७ ई. के अंकों में धारावाहिक प्रकाशित हुआ। २. रिसाला ए नवेद ए बेवगान (विधवा स्त्रियों की समस्या पर)-१८८३ ई.। ३. आर्यसमाज में शान्ति फैलाने के असली उपाय (मांस भक्षण के निषेध में लिखी गई पुस्तक)। ४. स्त्री शिक्षा के उपाय (इसका हिन्दी अनुवाद शिवचरणलाल सारस्वत ने किया। ५. कुमारी भूषण। ६. स्त्री शिक्षा-१८९३ ई. (सुखदेवलाल ने इसका हिन्दी

अनुवाद बनारस से प्रकाशित किया। ७. तारीखे दुनियां (ऐतिहासिक निरीक्षण शीर्षक से अनुवाद श्री शेरसिंह वर्मा (कर्णवास) ने किया, जो सरस्वती यंत्रालय प्रयाग से १९५१ विक्रमी में प्रकाशित हुआ। मुन्शी जगदम्बा प्रसाद ने इसी ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद दो भागों में स्वामी प्रेस मेरठ से प्रकाशित कराया। इसी ग्रन्थ के अन्य अनुवाद भी 'सृष्टि का इतिहास' शीर्षक से प्रकाशित हुए। ठाकुर अमर सिंह आर्य पथिक कृत अनुयाद गोविन्दराम हासानन्द द्वारा 'वेद प्रकाश' के विशेषांक के रूप में २०१४ विक्रमी में प्रकाशित हुआ। ८. भारत गौरवादर्श (हिन्दी अनुवाद-सूर्यप्रसाद मिश्र)।

इस्लाम, ईसाई तथा अहमदिया मत विषयक ग्रन्थ

९. नुस्खा ए खब्त ए अहमदिया 'सुरमा ए चश्म आरिया' पुस्तक का उत्तर। १०. तकजीब ए बुराहीन ए अहमदिया (१८९१), ११. रिसाला ए जिहाद यानी दीन ए मोहम्मदी की बुनियाद (१८९२), १२. लिक्चर इशायत ए इस्लाम पर (१८९३), १३. हुज्जतुल इस्लाम (१८९७), इसका हिन्दी अनुवाद पं. बद्रीदत्त शर्मा ने किया। १४. अबताले बशारते अहमदिया, १५. रद्दे खिलअते इस्लाम, १६. आइना-ए-शफाअत इस्लाम (क्षमा-दर्पण) यह पुस्तक पण्डित जी ने २५ अप्रैल १८९५ को लिखकर पूरी की। १७. कृश्चियन मत दर्पण (रामविलास शर्मा द्वारा अनूदित-१८९७ ई.), १८. यवन मत समीक्षा (हुज्जतुल इस्लाम का अनुवाद), १९. आइना ए इंजील (इंजील की हकीकत, १८८८ ई)।

अन्य ग्रन्थ

२०. श्रीकृष्ण का जीवन चरित्र (अनुवादक-सुखदेवलाल, अध्यापक), २१. सदाकत ऋग्वेद। 22. सुबूते तनासुख (पुनर्जन्म के प्रमाण), २३. पुराण किसने बनाये (इसके कई संस्करण प्रकाशित हुए हैं) Who wrote the Puranas शीर्षक से इसका अंग्रेजी अनुवाद भी हुआ। २४. देवीभागवत परीक्षा, २५ मूर्ति प्रकाश (मूलतः यह उर्दू पुस्तक 'चश्म ए नूर' प्रेस अमृतसर से १८८८ ई. में छपी, २६. पतितोद्धारण (मुन्शी जगदम्बा प्रसाद द्वारा अनूदित्त-१९०० ई.), २७. इतरेरूहानी, २८. सांच को आंच नहीं (शिवनारायण प्रसाद कायस्थ द्वारा लिखित 'स्वामी दयानन्द सरस्वती की महिमा' का उत्तर), २९. मुर्दा अवश्य जलाना चाहिए (अन्त्येष्टि कर्म आवश्यक है) शीर्षक से शेरसिंह वर्मा द्वारा अनूदित-१८९८ ई.)। ३०. महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवन चरित्र (मास्टर आत्माराम अमृतसरी द्वारा सम्पादित तथा आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब द्वारा १८९७ ई. में प्रकाशित)। इसका हिन्दी अनुवाद पं. रघुनन्दन सिंह निर्मल ने किया जो पहली बार आर्यसमाज नया बांस दिल्ली द्वारा २०२८ विक्रमी में तथा द्वितीय बार आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट दिल्ली द्वारा २०३४ विक्रमी में प्रकाशित हुआ। ३१. सदाकते इल्हाम (ए.ओ.ह्यूम लिखित 'दलाएल अगलाते इल्हाम' ब्राह्मसमाज लाहौर द्वारा प्रकाशित पुस्तक का उत्तर-१८८६ ई.)। ३२. सत्य धर्म का संदेश, ३३. निजात की असली तारीफ (मोक्ष का वास्तविक लक्षण), ३४. नियोग का मन्तव्य (मुहम्मदियों का मुता), ३५. सत्य सिद्धान्त और आर्यसमाज की शिक्षा।[१३]

पत्र-पत्रिकाएं

पं. लेखराम यथा नाम तथा गुण के साक्षात उदाहरण थे। सार्वजनिक जीवन में प्रवेश करते ही वैदिक धर्म प्रचार हेतु 'धर्मोपदेश' मासिक पत्र (उर्दू) पेशावर से निकाला। पण्डित जी की प्रेरणा से अजमेर से 'वैदिक विजय' मासिक पत्र प्रारम्भ हुआ। महात्मा मुन्शीराम के 'सद्धर्म प्रचारक' में लेखराम जी लिखते रहते थे। मेरठ के 'आर्य समाचार', बरेली से 'आर्य' तथा लाहौर से 'भारत सुधार' पत्र में पं. लेखराम ने अनेक लेख लिखे। आर्यसमाज के प्रारम्भिक युग में सर्वाधिक महत्त्व का कार्य 'आर्य गजट' ने किया है। पं. लेखराम इस पत्र के सम्पादक थे। भूमण्डल-प्रचारक मेहता जैमिनि ने पं. लेखराम की पत्रकारिता पर यह महत्त्वपूर्ण टिप्पणी की

है-'आर्य गजट' (फिरोजपुर) के सम्पादक का कार्य भार संभाला तो आर्य गजट का प्रसार (Circulation) व प्रतिष्ठा बहुत बढ़ गई। उस काल में 'आर्यगजट' में आर्यसमाज के मिशन को फैलाने में बड़ी भारी सहायता दी। पं. इन्द्र विद्यावाचस्पति लिखते हैं- ''आर्यगजट निकलता तो इससे पहले भी था परन्तु उसकी ख्याति तभी हुई जब पं. लेखराम के तर्क और जोश से भरे हुए लेख उसमें निकलने लगे। उन दिनों का 'आर्यगजट' आर्यपथिक पं. लेखराम का लिखित चित्र होता था।''[१५]

व्याख्यान कला के महारथी

गुरुकुल कांगड़ी के आचार्य, प्रसिद्ध व्याख्यानदाता और गवेषक आचार्य रामदेव जी ने अपने विद्यार्थी जीवन के सबसे महत्त्वपूर्ण संस्मरण को इन शब्दों में व्यक्त किया है- 'मैं व्याख्यान सुनने लगा, सुनने क्या लगा, व्याख्यान ने स्वयं मुझे अपनी तरफ आकृष्ट कर लिया। पं. लेखराम जी एक घंटा तक बोले। उनका भाषण सचमुच ज्ञान का भण्डार था। अपने व्याख्यान में उन्होंने इतने अधिक वेदमंत्रों, फारसी-अरबी के वाक्यों तथा यूरोपियन विद्वान् के प्रमाण और उद्धरण दिये कि मैं आश्चर्यचकित रह गया। मेरे मन में आया यदि व्याख्याता बनना हो तो इन्ही महापुरुष को आदर्श बनाना चाहिए। मैने सचमुच उन्हें अपना आदर्श बनाया।[१६]

दयानन्द के समर्पित अनुयायी

पं. लेखराम ऋषि दयानन्द के प्रति कुछ भी अशोभनीय या मिथ्या बात सुनने को तैयार न थे। लाला लाजपत राय ने एक घटना का उल्लेख किया है- ''remember when once in Ajmer Rai Mulraj said that Swami Dayanand had changed his views on vegetarianism under pressure from the Jains, lears flowed from pandit Lekhram's eyes involuntarily whenever anybody attacked the personality of Swamiji, he could not contain himself''[१७] अर्थात् मुझे स्मरण है कि एक बार अजमेर में राय मूलराज ने कहा- स्वामी दयानन्द ने जैनियों के दबाव में शाकाहार सम्बन्धी अपने विचार बदले। यह सुनते ही पं. लेखराम के नयनों से टप-टप आँसू गिरने लगे। जब कभी किसी ने स्वामी जी के व्यक्तित्व पर प्रहार किया, उसे लेखराम सहन न कर सकें।

आर्यसमाज के इतिहास का एक दुर्भाग्यपूर्ण पहलू यह है कि रायबहादुर मूलराज आर्यसमाज लाहौर का प्रधान तथा परोपकारिणी सभा का उपप्रधान रहा, वह मांसभक्षी था। उसने अपने मांस भक्षण की बात ऋषि दयानन्द से छिपाई। स्वामी जी द्वारा लिखित 'गोकरुणानिधि:' का ऋषि दयानन्द के द्वारा बार-बार आग्रह करने पर भी मूलराज ने उसका अंग्रेजी अनुवाद नहीं किया। अन्तत: उसका अंग्रेजी अनुवाद स्वामी जी ने दूसरे लोगों से बम्बई में करवाया।[१८] मूलराज ने लेखराम के समक्ष मांसाहार के विरूद्ध जैनियों को दोषी ठहराया। उसी मूलराज में १९३३ ई. में 'दयानन्द अर्द्धनिर्वाण शताब्दी' पर 'दशप्रश्नी' पुस्तिका छपवाई, उसमें मांस विषयक पंक्तियों को सत्यार्थप्रकाश से काटने का दोष मुन्शी समर्थदान (वैदिक यंत्रालय के प्रबन्धक) पर लगाया।[१९]

कहावत है झूठे को याद नहीं रहती या झूठ के पाँव नहीं होते। इसका आर्यसमाज के इतिहास में सबसे प्रबल उदाहरण रायबहादुर मूलराज के परस्पर विरोधी वक्तव्य हैं। मूलराज की आत्मकथा ''Beginning of Punjabi Nationalism नाम से डी.ए.बी. मैनेजिंग कमेटी ने १९७५ ई. में छपवाई। इसमें मूलराज ने लिखा है-''पं. लेखराम के कारण 'सत्यार्थ प्रकाश' में मांस भक्षण के पक्ष को निकाल कर उसमें शाकाहार का सिद्धान्त जोड़ा गया।[२०]

पं. लेखराम ने परोपकारिणी सभा के मंत्री जी को

चि?ट्ठी लिखकर वैदिक यंत्रालय की मैनेजरी पद पर नियुक्ति के लिए प्रार्थना की थी। परोपकारिणी सभा के उपप्रधान मूलराज की कुचाल से पं. लेखराम को नहीं रखा गया।[२१]

ऋषि दयानन्द के दो पत्र

१८८२ ई. में स्वामी दयानन्द ने पं. लेखराम को दो पत्र लिखे। गौ आदि की रक्षा हेतु प्रजा से हस्ताक्षर करवा कर महारानी विक्टोरिया की सेवा में ज्ञापन देने का ऋषिवर ने निश्चय किया था। प्रथम पत्र में ऋषि ने पं. लेखराम को इस निमित्त हस्ताक्षर करवाने की प्रेरणा दी। दूसरे पत्र में पंजाब में राष्ट्रभाषा-आर्य भाषा (हिन्दी) के लिए हस्ताक्षर करवाने का दायित्व सौंपा।[२२] पं. लेखराम ने अपने गुरु के आदेश का पूरी निष्ठा से पालन किया।

आर्यों के नाम अंतिम सन्देश

०६ मार्च १८९७ ई. (लाहौर) को सायं ०७ बजे पं. लेखराम ऋषि दयानन्द की मृत्यु का दृश्य खींच रहे थे, तभी उनकी माता के वचन सुनाई पड़े- ''पुत्र लेखराम! तेल नहीं आया। माता जी के वचन सुनकर पण्डित जी उठे, ऋषि जीवनी के लिखे जा रहे पत्रे को वहीं रख दिया। आँखे बन्द किये, दोनों बाहें ऊपर उठा कर अंगड़ाई ले रहे थे- तभी मौके के ताक में बैठा दुष्ट घातक ने वीरवर लेखराम के पेट के अन्दर अभ्यस्त हाथों से छूरी अन्दर घुसेड़ कर घुमा दी। रक्त का फव्वारा फूट पड़ा और ऋषि जीवनी के पन्ने लेखराम के लहू से सिंचित हो गये। पूरे दो घंटों के बाद डॉ. पेरी साहब आये और कटी हुई आँतों को सीने का कार्य प्रारम्भ किया। एक स्थान की आँत कटकर दो टुकड़े हो गई थी। ८ बड़े घाव और बहुत से छोटे घाव भी थे। डॉ. आश्चर्यचकित था कि निरन्तर दो घंटों तक खून बहते रहने पर भी यह कैसे जीवित है? उस समय पं. लेखराम 'ओउम् विश्वानि देव' मन्त्र तथा गायत्री मन्त्र का पाठ कर रहे थे। बीच-बीच में 'परमेश्वर तुम महान् हो, परम पिता... इत्यादि शब्द बोलते रहे। १:३० बजे रात तक सचेत थे। केवल परमेश्वर का नाम जप था, न घर वालों की चिन्ता और न घातक पर अप्रसन्नता और न मौत का डर। यदि चिन्ता थी तो आर्यसमाज की, यदि ध्यान था तो उस महायज्ञ की ओर जो ऋषि दयानन्द रच गये थे। अन्तिम सन्देश अपने सहधर्मियों को यह दिया- ''आर्यसमाज से तकरीर और तहरीर का काम बन्द नहीं होना चाहिए।'' और २:०० बजे रात्रि में १९वीं शताब्दी के युगपुरुष स्वामी दयानन्द सरस्वती के इस नरकेहरी अनुयायी ने वैदिक धर्म और आर्य जाति की रक्षा में अपना बलिदान दे दिया। वीर हकीकत राय के बाद हिन्दू धर्म के लिए वीरवर पं. लेखराम का यह अद्भुत बलिदान था। स्वामी दयानन्द के रचाये वैदिक धर्म यज्ञ में उनके सच्चे शिष्य पं. लेखराम की यह उल्लेखनीय आहुति थी।

पाद टिप्पणियाँ

१. यजुर्वेद (माध्यन्दिन संहिता), ३२/३

२. धर्मवीर पं. लेखराम (राजेन्द्र जिज्ञासु), पृ.-५४

३. वही, पृष्ठ-६९

४. वहीं, पृष्ठ-६८-६९

५. वही, पृष्ठ-३९३

६. कुलियात आर्य मुसाफिर, अनुवादक पं. शान्तिप्रकाश शास्त्रार्थ महारथी की लिखित भूमिका तथा प्रकाशकीय वक्तव्य । प्रकाशक आर्य प्रतिनिधि सभा (पंजाब) जालन्धर, द्वितीय खण्ड, १९७२ ई.।

७. महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवन चरित्र (पं. लेखराम), भूमिका-महात्मा मुन्शीराम (स्वामी श्रद्धानन्द)।

८. पं. देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्यायं द्वारा संगृहीत तथा पं. घासीराम द्वारा सख्यादित और लिखित आषि दयानन्द सरस्वती का जीवन चरित की भूमिका।

९. रक्तसाक्षी पं. लेखराम (राजेन्द्र 'जिज्ञासु'), पृष्ठ-३९१

१०. सत्यार्थप्रकाश (आर्यसमाज स्थापना शताब्दी संस्करण), सम्पादक पं. युधिष्टिर मीमांसक-सम्पादकीय,

पृष्ठ-१६, प्रकाशक-रामलाल कपूर ट्रस्ट, द्वितीय संस्करण-१९७५ ई.।

११. उपदेश मंजरी (पूना प्रवचन), उर्दू संस्करण-दूसरा, स्वामी श्रद्धानन्द लिखित भूमिका, पृष्ठ-१.२

१२. ऋषि दयानन्द का जीवन चरित्र (पं. लेखराम) पृष्ठ-४४-४३

१३. आर्यलेखक कोश (डॉ. भवानीलाल भारतीय), लेखराम आर्यपथिक:, पृष्ठ-२५४-२५५

१४. आर्यसमाचार (पत्रिका) आषाढ़ १९४२ विक्रम संवत्, पृष्ठ-१०६

१५. आर्यसमाज का इतिहास (पं. इन्द्र विद्या वाचस्पति) प्रथम साय, पृष्ठ-२४७

१६. आर्यमर्यादा (साप्ताहिक पत्र) ०६ मार्च १९७७ ई. में 'आचार्य रामदेव जी के संस्मरण' संज्ञक लेख।

१७. Lajpat Rai autobiographical wirtings, Page-76

१८. ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन, भाग-१ पृष्ठ-४८५, भाग-०२ पृष्ठ-५०३,५२२, ५६१

१९. ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों का इतिहास (द्वितीय संस्करण), १९८३ ई. पृष्ठ-३९६-३९९, लेखक-पं. युधिष्ठिर मीमांसक।

२०. अमरकथा-धर्मवीर पं. लेखराम (राजेन्द्र 'जिज्ञासु') २००८ ई. पृष्ठ-४५

२१. रक्तसाक्षी पं. लेखराम (राजेन्द्र 'जिज्ञासु'), पृष्ठ-३८९। इस पुस्तक में पं. लेखराम के पत्र की फोटोकॉपी भी दी गई है।

२२. वही, पृष्ठ-४१८

चाणक्यपुरी, अमेठी-२२७४०५, सम्पर्क - दूरभाष- 7303474301

*** निवेदन ***

कीर्तिशेष आचार्य धर्मवीर जी ने अपने दानदाताओं के सहयोग से ऋषि उद्यान में निरन्तर चलने वाले ऋषि लंगर की व्यवस्था की थी, जो सतत संचालित हो रही है। इसमें ऋषि उद्यान की वृहद् भोजनशाला में **ऋषि उद्यान में निवास करने वाले योगसाधकों, संन्यासियों-वानप्रस्थियों, ब्रह्मचारियों व आचार्यों के भोजन, दुग्ध, फल इत्यादि की व्यवस्था की जाती है।**

ऋषि उद्यान में आने वाले अतिथियों, विद्वानों, दर्शनार्थियों इत्यादि के निवास तथा भोजनादि की व्यवस्था इसके अन्तर्गत संचालित की जाती है।

आर्य दानदाता-परिवारों के सहयोग से ही यह अतिथि-यज्ञ सम्भव हो पा रहा है। अत: हम सभी आर्य परिवारों का दायित्व एवं कर्त्तव्य है कि हम इस यज्ञ में होता बनकर निरन्तर दान-रूपी आहुति प्रदान कर पुण्य के भागी बनें। विभिन्न संस्कारों एवं अन्य शुभावसरों पर अपनी दान-रूपी आहुति देना न भूलें, ताकि यह लोकोपकारी अतिथि यज्ञ निरन्तर चलता रहे।

इस अतिथि यज्ञ हेतु आप **५१००/-(पाँच हजार एक सौ रुपये) प्रतिवर्ष** भेजकर अपना सहयोग प्रदान कर अनुग्रहीत करें।

ओम्मुनि
प्रधान

कन्हैयालाल आर्य
मन्त्री

वैदिक राष्ट्र का स्वरूप एवं तात्त्विक पर्यालोचन

डॉ. आशुतोष पारीक

सारांशः राष्ट्र के विविध सन्दर्भों में कहीं जाति की महत्ता तो कहीं आर्थिक स्वार्थों की तत्परता, कहीं सामाजिक राग–द्वेष की प्रचुरता तो कहीं किसी राजपरिवार की महत्ता को हावी होते देखा जाता है। वैदिक राष्ट्र का स्वरूप और उसकी शक्ति इन सभी संकुचित विचारों के त्याग का परिचय कराती है। वैदिक राष्ट्र के तात्त्विक चिन्तन से हम वर्तमान युग में भी कैसे राष्ट्र को अपने अस्तित्व, अधिकार और कर्त्तव्य का आधार बनाना चाहते हैं, इसका उचित निदर्शन प्राप्त होता है। अतः आइए, वैदिक राष्ट्र के स्वरूप को जानें और मानवीयता के सच्चे पथप्रदर्शक के रूप में ''वसुधैव कुटुम्बकम्'' के सद्भाव को पनपने का सुदृढ आधार प्रदान करें।

आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामा राष्ट्रे
राजन्यः शूर इषव्योऽतिव्याधी
महारथो जायतां दोग्ध्री धेनुर्वोढानड्वानाशुः
सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः
सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायतां निकामे
निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो
न औषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम्।।[१]

राष्ट्र के माहात्म्य को प्रतिपादित करता यह यजुर्वेद का मन्त्र उदात्त विचारों का सम्प्रेषण करता है। हम जानते हैं कि सम्पूर्ण विद्याओं और प्रत्ययों का मूल वेद है। स्वामी दयानन्द के मत में ''वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना–पढ़ाना और सुनना–सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।''[२] अतः हमें जब भी किसी प्रत्यय पर विचार करना होता है तो हम उसका मूल वेद में खोजने का प्रयत्न करते हैं। हमारा सनातन राष्ट्रीय चिन्तन भी वेदमूलक है। समग्र राष्ट्रीय चिन्तन ब्रह्मज्ञान में समाहित है। वेद ब्रह्म है, ब्रह्म बल है, बल राष्ट्र है, जिसकी प्रधान रूप से चार शक्तियाँ हैं–१. ज्ञानशक्ति, २. रक्षकशक्ति, ३. पोषकशक्ति एवं ४. धारकशक्ति। ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में कहा गया है–

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
उरू तदस्य यद् वैश्यः पद्भ्यां शूद्रोऽजायत।।[३]

अर्थात् उस विराट् पुरुष से ही चारों वर्णों की उत्पत्ति हुई, जो राष्ट्र के अंग थे। यह मन्त्र शरीर, समाज, राष्ट्र और भूमण्डल तथा विश्व मण्डल के राष्ट्र स्वरूप में समान रूप से घटित है। अथर्ववेद में राष्ट्र की उत्पत्ति के सम्बन्ध में कहा गया है–

भद्रमिच्छन्तः ऋषयः स्वर्विदस्तपो दीक्षामुपनिषेदुरग्रे।
ततो राष्ट्रं बलमोजश्च जातं तस्मै देवा उपसंनमन्तु।।[४]

अथर्ववेद के उच्छिष्ट सूक्त में राष्ट्र को उच्छिष्ट में निहित बताया गया है।[५] 'राजृ दीप्तौ' धातु से करण अर्थ में ष्ट्रन् प्रत्यय से राष्ट्र शब्द निष्पन्न हुआ है। कोशों में राष्ट्र का अर्थ राज्य, देश, साम्राज्य, जिला, प्रदेश, दुर्ग, बल आदि किये गये हैं[६] किन्तु जिस राष्ट्र की अवधारणा वेद में है, वह सम्पूर्ण त्रिलोक है, वह अध्यात्म, अधिदैव तथा अधिभूत अर्थ का प्रतिपादक है। राष्ट्र शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग ऋग्वेद में वाक् सूक्त के अन्तर्गत मिलता है। वेद, ब्राह्मण, उपनिषद्, पुराणादि में राष्ट्र की सीमा व स्वरूप का चिन्तन विस्तृत रूप से अभिव्यक्त हुआ है। हमारा वर्तमान जगत् राष्ट्र के आधिभौतिक स्वरूप को ही महत्त्व प्रदान कर पा रहा है, किन्तु इसके अध्यात्म व अधिदैव स्वरूप का दर्शन कराने वाले मन्त्रों का भी निदर्शन वर्तमान समाज के लिए उपादेय होगा। यजुर्वेद के अध्याय २० में राज्य के आध्यात्मिक स्वरूप का इस प्रकार वर्णन मिलता है–

शिरो मे श्रीर्यशो मुखं त्विषिः केशाश्च श्मश्रूणि।
राजा मे प्राणो अमृतं सम्राट् चक्षुविराट् श्रोत्रम्॥
जिह्वा मे भ्रदं वाङ्महो मनो मन्युः स्वराड् भामः।
मोदाः प्रमोदाऽङ्गुलीरङ्गानि मित्रं मे सहः॥
बाहू मे बलमिन्द्रियं हस्तौ मे कर्म वीर्यम्।

आत्मा क्षत्रमुरो मम॥

पृष्ठीर्मे राष्ट्रमुदरमसौ ग्रीवाश्च श्रोणी।

उरू अरत्नी जानुनी विशो मेऽङ्गानि॥[७]

प्रस्तुत मंत्र में पृष्ठ भाग को राष्ट्र कहा गया है जो समस्त जीवन का सुदृढ आधार है। अधिदैवत राष्ट्र के स्वरूप का निदर्शन कराता हुआ वेद कहता है–

राज्यसि प्राची। सम्राडसि प्रतीची।

स्वराडस्युदीची। अधिपत्न्यसि बृहती॥[८]

इसी प्रकार अथर्ववेद में कहा गया है कि अधिदैव रूप से वर्तमान राष्ट्र को सविता, अङ्गिन, इन्द्र, बृहस्पति, मित्रावरूण आदि देवों द्वारा धारण किया जाता है। वरूण को राजा कहा गया है–

येन देवं सवितारं परि देवा धारयन्,

तेनैव ब्रह्मणस्पते परिराष्ट्राय धत्तन।

ध्रुवं ते राजा वरुणो ध्रुवं देवा बृहस्पतिः,

ध्रुवं इन्द्रश्चाग्निश्च राष्ट्रं धारयतां ध्रुवम्॥[९]

अथर्ववेद में राष्ट्रभृत् देवों को सूर्य के चारों ओर विचरण करते हुए बताया गया है।[१०] कहा गया है कि जो राष्ट्रीभूत देवता सूर्य के अभिमुख होकर गति करते हैं, वे सम्यक् ज्ञान, सुमन वाने रोहित राष्ट्र को धारण करें। अथर्ववेद के १३वें काण्ड में रोहित का सविस्तार वर्णन है। मन्त्रों में आया हुआ राष्ट्र शब्द व्यष्टि और समष्टि से संवलित व्यापक आधार को सूचित करता है। राष्ट्र के रक्षक के रूप में क्षत्र अथवा क्षत्रिय की नियुक्ति की गई है, जिसके कर्म आश्रमव्यवस्था के अन्तर्गत नियन्त्रित किये गये हैं। अथर्ववेद के ब्रह्मचारी सूक्त में कहा गया है–

ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं विरक्षति॥

यहाँ ब्रह्मचर्य तप से तात्पर्य राष्ट्र के समग्र वृद्धिभाव से है तथा रक्ष् धातु संवरण, दान, व्यापन, हिंसा एवं रक्षा अर्थ वाली धातुओं का अर्थ ग्रहण किए हुए हैं। श्रीमद्भागवत में तेज, बल, धृति, शौर्य, तितिक्षा, औदार्य, उद्यम, स्थैर्य, ब्रह्मण्य, ऐश्वर्य को क्षत्रप्रकृतियाँ कहा है।[११] इन्द्र को प्रधान योद्धा के रूप में चित्रित किया गया है।[१२] यजुर्वेद में आपोदेवी को राष्ट्रदा कहा गया है।[१३] यजुर्वेद में सब कुछ यज्ञ से सम्पन्न होने की कामना है। राजा से सम्बन्धित आसन्दी, कुम्भी, सुरापानी आदि नामों का उल्लेख प्राप्त होता है।[१४] अथर्ववेद में प्रजापति की पुत्रियों के रूप में सभा और समिति का उल्लेख[१५] किया गया है–

सभा च समितिच्चावतां प्रजापतेर्दुहितरौ संविदाने॥

सभा को नरिष्टा एवं सभा में बैठने वालों को सभासद् कहा गया है तथा सभी की वाणी को संयत होने की कामना की गई है–

सभा विदुषां समाजः।

सर्वत्र भान्ति देवा यत्र सा सभा यद्वा समानरूपेण यद्वा सह।

समितिः संयन्ति संगच्छन्ते युद्धाय अत्रेति समितिः। संग्रामः। सा ग्रामीणजनसभेत्यर्थः।

यद्वा संग्रामनामानि यज्ञनामानि भवन्तीति यास्केनोक्तत्वात् समितिः शब्देन यज्ञ उच्यते॥[१६]

वर्तमान में सभा, समिति शब्द मन्त्रिपरिषद् अर्थों में प्रयुक्त होता है। शासन कार्य में राजा को सब प्रकार से सहायता देने वाले मन्त्री होते हैं, राजा इन पर आश्रित रहता है, इनसे पथप्रदर्शन प्राप्त करता है, इन्हें रत्निन् भी कहा जाता है। ये राजकर्ता या राजकृत् कहे गये हैं।[१७] जो राजा के लिए उपदेशक, राजपुत्रों व प्रजाओं के लिए शिक्षक, विचारमन्त्र में ऋषि, समाज के लिए पथप्रदर्शक और योद्धाओं के लिए अग्रगामी होते हैं उन्हें पुरोहित कहा गया है–

वयं राष्ट्रे जागृयाम पुरोहिताः॥

अथर्ववेद में पौरोहित्य कर्म वर्णित है।[१८] ऐतरेय ब्राह्मण में यज्ञ करने वाले ब्राह्मण को पुरोहित बनाने के लिए कहा गया है। आधिभौतिक पुरोहित के स्वरूप का वर्णन करते हुए कहा गया है–

अग्निर्वाव पुरोहितः। पृथ्वी पुरोधाता, वायुर्वा पुरोहितोऽन्तरिक्ष पुरोधाता,

आदित्यो वाव पुरोहितो द्यौः पुरोधाता।
एष वै पुरोहित य एवं वेद अथ स तिरोहितो य एवं न वेद।
पुर एनम् अग्रे दधाति दधति इति वा पुरोहितः॥[१९]

जिस प्रकार पृथ्वी आदि पिण्डों में पुरोहित अग्नि का प्राधान्य रहता है, उसी प्रकार राजा के यहाँ पुरोहित का प्रभाव रहता था। अङ्गिन, वायु, सूर्य का तीनों वेदों से क्रमशः सम्बन्ध है, अतः पुरोहित का वेदविद् होना आवश्यक माना गया है। बृहस्पति देवों के पुरोहित थे। तद्वत् मनुष्य राजा के पुरोहित होते हैं।

बृहस्पतिर्ह देवानां पुरोहितः तमन्वन्ये मनुष्य राज्ञां पुरोहिताः॥[२०]

यजुर्वेद में भी बृहस्पति को पुरोहित कहा गया है। ऐसे शासकों को क्रमिक उच्चता के अनुसार अधिराज, राजाधिराज, सम्राट्, स्वराट्, विराट्, सर्वराट् कहा गया है। अपने पद–गौरव प्रदर्शन के लिए राजसूय, वाजपेय, अश्वमेध, पुरुषमेध, सर्वमेध आदि यज्ञ करते थे। इनका विस्तार से वर्णन ब्राह्मणग्रन्थों में प्राप्त होता है। ऐतरेय ब्राह्मण में तत्कालीन शासनपद्धतियों का उल्लेख भी प्राप्त होता है।

स्वस्ति साम्राज्यं भौज्यं स्वाराज्यं वैराज्यं पारमेष्ठ्यराज्यं महाराज्याधिपत्य...
पृथिव्यै समुद्रपर्यन्ताया एकराडिति,
तदप्येष श्लोकोऽभिगीयते॥

इन सभी शब्दों के मूल में राज् धातु है जिसका अर्थ दीप्त होना है। सम्राज् अर्थात् सम्यक् रूप से प्रकाशित होना, विराट् अर्थात् विशेष या विविध रूप से प्रकाशित होना। प्रकाशमान सम्राज् स्वयं एक ओर अद्वैत है, स्वराज् अवस्था में वह अपने स्व को ही विषय बना लेता है और एक बाह्य इदं रूप में देखकर अहमस्मि का अनुभव करता है। यही स्व विराज् अवस्था में पहुँचकर वि में परिवर्तित हो जाता है, यही विराज् के स्थान पर विराजानि बन जाता है।

प्राकृतिक पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्यौः के अधिपति क्रमशः अङ्गिन, वायु और आदित्य को माना गया है। सूर्य की त्रिलोकी रोदसी में सूर्य की प्रधानता है। सूर्य की अङ्गिन के अधीन उसी के विकास रूप से अन्तरिक्ष की अङ्गिन विद्युत् तथा पृथ्वी की अग्नि दोनों ही सूर्य से उत्पन्न हैं।

सूर्याप्रसूतावग्नी तु दृष्टौ मध्यमपार्थिवौ॥

इस प्रकार सूर्य ही सबका अधिपति नियामक स्वराट् है, सूर्य प्राण ही इन्द्र है, फलतः स्वराट् है, सूर्य की शक्ति ही ब्रह्माण्ड में शासन करती है। स्वयंभू एवं परमेष्ठी से ब्रह्म और विष्णु विराट् कहे गए हैं। इसी प्रकार प्राकृतिक व्यवस्था के आधार पर भौम त्रिलोकी की व्यवस्था हुई। भौम स्वर्ग के अधिपति इन्द्र माने गये हैं, अतः हमारी राजा आदि अवधारणाएँ वैदिक हैं। राजा अपने राज्य में स्वतंत्र होता था किन्तु अन्य राजाओं के सम्बन्ध में वह सम्राट् के अधीन माना जाता था। इसी प्रकार सम्राट् भी स्वराट् के अधीन समझा जाता था। इन्द्र त्रिलोक के अधिष्ठाता थे, इसका स्पष्ट उल्लेख ऋग्वेद में प्राप्त होता है।[२१] वरुण को भी राजा कहा गया है।[२२] वाक् सूक्त में परमेष्ठी मण्डल की अधिष्ठात्री आपो देवी स्वयं को राष्ट्री कहती है– **अहं राष्ट्री संगमनी**।[२३]

वेदमन्त्रों में आए हुए ग्राम, ग्रामणी, विश्, विशांपति, जन, जनपद, गोप्ता आदि शब्दों को देखकर सम्पूर्ण राजतन्त्र को पाँच भागों में बाँटा गया है– १. गृह, २. कुल, ३. जन, ४. जनपद, ५. राष्ट्र। इस प्रकार वैदिक मन्त्रों में आए हुए राष्ट्र, राष्ट्री, राष्ट्रभृत् आदि शब्द अपना व्यावक अर्थ रखते हैं। आध्यात्मिक और आधिदैविक राष्ट्र के स्वरूप को अभिमुख कर उससे समतुलित पार्थिव राष्ट्र–जीवन की योजना हमारे मनीषियों ने की है। राष्ट्र को ध्रुव रूप में स्थिर रखने के मन्त्र भी प्राप्त होते हैं। वैदिक राष्ट्रचिन्तन अहं भाव से ऊपर उठकर सर्वात्मभाव वाला था। वहाँ सभी के हित की कामना है। उनके चिन्तन में सूक्ष्मता से स्थूलता और स्थूलता से सूक्ष्मता

की ओर गति–आगति करने वाले प्राणों की अभिव्यक्ति थी। अतः उन्होंने सबके कर्म, गति, वाणी, मन, चित्त और संकल्प के एक होने की कामना की। ऋग्वेद के दसवें मण्डल का अन्तिम संज्ञान सूक्त इन्हीं भावों को प्रदर्शित करता है।

समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम्।
समानं मन्त्रमभिमन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि॥[२४]

वर्तमान जगत् राष्ट्रवादी होने का तात्पर्य क्षेत्रविशेष अथवा वर्गविशेष के प्रति अपनी निष्ठा से समझने का प्रयास करता है, ऐसा राष्ट्रवाद स्वयं में अहं और अन्यों में विद्रोह के भावों को ही भर सकता है। अतः वैदिक राष्ट्र की व्यापक अवधारणा ही हमारे जीवन को सर्वांगपूर्ण बना सकेगी। मात्र स्वयं के हित की कामना न करते हुए सम्पूर्ण विश्व के कल्याण की कामना ही वैदिक राष्ट्र की वास्तविक अभिव्यक्ति है। जब वेद कहता है **'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्'** तो इसका तात्पर्य किसी वर्गविशेष से नहीं अपितु समस्त विश्व के कल्याण से है।

अतः आइये हम ऐसे ही राष्ट्रवाद के पोषक और प्रेरक बनें... विश्व के कल्याण में अपने हित को देखें... स्वार्थभाव से विमुख हो परमार्थ भाव का चिन्तन करें, तब ही हम राष्ट्र के स्वरूप और उसकी शक्ति से सच्चे अर्थों में अवगत हो सकेंगे।

सन्दर्भसूची–

१. यजुर्वेद २२.२२

२. आर्यसमाज का तीसरा नियम

३. ऋग्वेद १०.९०.१

४. अथर्ववेद 19.42.1

५. पूर्ववत् ११.९.१७–१८

६. अमरकोश, मनुस्मृति ७.३२,७.१०९,९.२५४, १०.६१

७. यजुर्वेद २०.४–८

८. यजुर्वेद १५.१०,१२–१४

९. अथर्ववेद १३.१.२०, ६.८८.२ ऋग्वेद १०.१७३.५

१०. अथर्ववेद १३.१.३५

११. श्रीमद्भागवत ११.१७.१७

१२. ऋग्वेद ३१.१२.३

१३. यजुर्वेद १०.३

१४. यजुर्वेद १९.१६

१५. अथर्ववेद ७.१३.१,८.११.८–११

१६. अथर्ववेद ७.१३.२१

१७. अथर्ववेद ३.५.७

१८. अथर्ववेद ३.१९.११

१९. ऐतरेयब्राह्मण ८.५.१

२०. ऐतरेय ब्राह्मण ८.५.३ यजुर्वेद २०.११

२१. ऋग्वेद १०.८९.१०

२२. ऋग्वेद १.२५.५

२३. ऋग्वेद १०.१२५.३

२४. ऋग्वेद १०.१९१.३

सहायक ग्रन्थसूची–

१. ऋग्वेद भाष्य – स्वामी दयानन्द सरस्वती, वैदिक यन्त्रालय, अजमेर।

२. यजुर्वेद भाषा भाष्य – स्वामी दयानन्द सरस्वती, दयानन्द संस्थान, दिल्ली।

३. सामवेद भाष्य – ब्रह्ममुनि परिव्राजक विद्यामार्तण्ड, वैदिक यन्त्रालय, अजमेर।

४. अथर्ववेद भाष्य – प्रो. विश्वनाथ विद्यालंकार, वैदिक यन्त्रालय, अजमेर।

५. मनुस्मृति – महर्षि मनु, सं. प्रो. सुरेन्द्र कुमार, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली।

६. ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका– स्वामी दयानन्द सरस्वती, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली।

७.सत्यार्थप्रकाश – स्वामी दयानन्द सरस्वती, वैदिक यन्त्रालय, अजमेर।

सह आचार्य, संस्कृत विभाग
सम्राट् पृथ्वीराज चौहान राजकीय महाविद्यालय, अजमेर

ज्ञानसूक्त - २२

प्रवचनकर्त्ता- डॉ. धर्मवीर
लेखिका - सुयशा आर्या

प्रिय पाठक! परोपकारी पिछले कई वर्षों से आपकी सेवा में डॉ. धर्मवीर जी के वेद प्रवचनों को प्रकाशित कर रही है। इसी शृंखला में ऋग्वेद १०/७१ 'ज्ञानसूक्त' की व्याख्यान माला प्रकाशित की जा रही है। प्रवचनों को लेखबद्ध करने का कार्य डॉ. धर्मवीर की ज्येष्ठ पुत्री श्रीमती सुयशा कर रही हैं।

-सम्पादक

अक्षण्वन्तः कर्णवन्तः सखायो मनोजवेष्वसमा बभूवुः।
आदध्नास उपकक्षास उत्वे ह्रदा इव स्नात्वा उत्वे दृत्रषे।।

हम इस वेदज्ञान की चर्चा में ऋग्वेद के ज्ञान सूक्त की चर्चा कर रहे हैं। इस सूक्त का ऋषि बृहस्पति है जो ज्ञ्क्र का अधिष्ठाता है, आचार्य है, स्वामी है ओर इसका देवता ज्ञान है अर्थात् इसमें जो बताया गया है वो ज्ञान को लेकर बताया गया है। हमारी चर्चा का प्रसंग इसका ७वाँ मन्त्र है। हम पीछे एक बात देख रहे थे, इस संसार में हम आए हैं तो हमारे लिए ज्ञान कितना अनिवार्य है। यह बात ठीक है कि कोई अज्ञानी होकर के, कम ज्ञान के साथ भी उसका का चल जाता हैलेकिन जो संसार में ज्ञानी होता है, ज्ञानी का अर्थ केवल इतना है कि उपयोग के लिए संसार में जितनी वस्तुएं हैं उन से अधिक से अधिक का उपयोग कर सकना और उनका पता होना यह ज्ञान है अर्थात् ज्ञान के अधिक होने का मतलब संसार की वस्तुओं का अधिक उपयोग करना। कर सकना का सामर्थ्य पाना। इतना ही ज्ञान है। इसलिए संसार में कोई व्स्तु है तो उसे जानना तो पड़ेगा ही या तो हम किसी सुन कर पता करते हैं या देखकर उया उसके बारे में पढ़ के पता करते हैं इसलिए हमारे यहाँ ज्ञान के लिए बहुत प्रयत्न करने का विधान है और बहुत महत्त्व भी दिया गया है। हमारे यहाँ एक नियम है- चतुर्भिः प्रकारैः विद्योपयुक्ता भवति। अर्थात् इस संसार में जो विद्या है जो ज्ञान है वो चार प्रकार से उपयोग में आता है। इसी तरह से हमने देखा स्वाध्याय कालेन, प्रवचन कालेन, आगम कालेन व्यवहार कालेनेति। इसमें पढ़ना, मनन करना, फिर उसका प्रवचन करना और फिर उसे काम में लाना, यह बात हमने पीछे देखी। इसको एक और प्रकार से संस्कृत साहित्य में कहा है- श्रवण, मनन निदिध्यासन और साक्षात्कार। यहाँ श्रवण में दोनो चीजें आ गयीं- आँख से देखकर भ जो हमने पाया है या कान से सुनकर जो प्राप्त किया है। ज्ञान का पहला उपाय कहा, श्रवण करना। सुनने मा9 से वह ज्ञान हमारा नहीं होता, वैसे ही देखने या पढ़ने मात्र से भी ज्ञान हमारा नहीं होता हमारे काम तो चीज आती है जो देखने के बाद अपने पास रख ली, चित्त में संगृहीत कर ल, बुद्धि में अपना ली। जब हम पढ़ते हैं तो सब पढ़ा हुआ अपने अन्दर संगृहीत नहीं होता सब समझ में भी नहीं आता। लेकिन किसी पंक्ति विशेष पर यदि आपका ध्यान चला जाए तो वह पंक्ति आपको बहुत दिनों तक याद रहती है। वैसे ही जो चीज हम सुन रहे हैं, विद्यार्थी कक्षा में पूरा पाठ सुनता है, लेकिन उसे स्मरण केवल उतना ही रहता है, जिने पर उसने मन को लगाया था या ध्यान दया था, या दोहराया था। इसलिए जब कोई बात हमने सुनी है, पढ़ी है तो मनुष्य उसके बाद उस पर विचार करता है। उसके लिए यहाँ जिस शब्द का प्रयोग हुआ है- वह है मनन। मन के

द्वारा जिसका चिन्तन किया जा रहा है वह प्रक्रिया मनन है। उसके बारे में हम विस्तार से सोचते हैं उसके हानि - लाभ, उपयोग - दुरुपयोग के बारे में जानते - समझते हैं, तब वह चीज हमारे लिए स्पष्ट होती है और उसके बाद जो चीज है- निश्चय। यह काम ठीक है, इसका अमुक लाभ हो सकता है। यह जो निश्चयात्मक बात है वो निदिध्यासन है ओर उपयाग करके देखना, उस बात को व्यवहार में लाना, और व्यवहार मं लाकर उसके हानि - लाभ को जाँच लेना यह साक्षात्कार है। तो यह सब बातें - श्रवण, मनन, निदिध्यासन और साक्षात्कार वेदमन्त्र इस छोटे से प्रसंग में कहता है अब इसमें जो रोचक बात कही है कि आँख तो सबकी एक सी है, कान बसके एक से हैं लेकिन दोनों का ज्ञान ग्रहण का सामर्थ्य है वो अलग-अलग है। साधन एक जैसे होने पर उनका सामर्थ्य अलग-अलग क्यों है?- तब यह हमारे पीछे की चर्चा है वो काम में आएगी कि हमने श्रवण में, मनन में, निदिध्यासन में, साक्षात्कार में कितना समय लगाया। तब हमें एक बात का पता लगता है कि आँख और कान के देखने मात्र या सुनने मात्र से कोई ज्ञान हमको प्राप्त नहीं होता। यद्यपि आँख वाले और कान वाले हैं हम सब। यहाँ 'वन्तः' कहा है, अर्थात् 'वाले' अक्षण्वन्तः कर्णवन्तः सखायो लेकिन अन्तर क्या है- मनोजवेष्वसमा बभूवुः - इनके आँख और कान तो समान हैं, लेकिन वास्तव में तो देखना तो आँखों से होता ही नहीं है। हम समझते हैं आँख देखती है, कान सुनते हैं। यदि आँख देाख्ती होती और कान सुनते होते तो एक मरा हुआ आदमी जिसकी आँखें ठीक-ठाक हैं, कान ठीक है, तो क्या वह देख और सुन सकता है? इससे भी आगे, आधुनिक विज्ञान ने एक और चमत्कार कर दिया- हमारी आँख ठीक है इसका सबसे बड़ा प्रमाण क्या? हम एक मरे हुए व्यक्ति की आँख निकाल कर के एक न देखने वाले व्यकित के अन्दर आरोपित कर देते हैँ तो वह उस आँख से देखने लगता है। इसका मतलब कि आँख तो देखने में समर्थ थी, फिर मुर्दे को क्यों नहीं दिखाई दे रहा था? तब पता लगता है, आँख देखने का साधन है, स्वयं आँख द्रष्टा नहीं है, कर्त्तत्व इसके अन्दर नहीं है इसलिए यह कभी स्वयं नहीं देख पाएगी। कान भी स्वयं नहीं सुन पायेंगे। तो जो अन्तर आता है 'अक्षण्वन्तः कर्मवन्तः सखायो' कितना भी अच्छा चश्मा हो यदि आंख के सामर्थ्य में कमी है तो उसे ह एक अंश तक ही पूरा कर सकते हैं, उससे आगे पूरी नहीं हो सकती। इसलिए यहाँ मन्त्र में कहा गया है कि समान आँखों वाले होने के बाद भी 'ननोजवेष्वसमा बभूवुः' जो मानसिक पकड़ है जो मानसिक गति है, बुद्धि से ग्रहण करने का जो सामर्थ्य है वो तो सबका समान नहीं होता, क्योंकि सबका ध्यान पढ़ाई में नहीं होता, समझ बराबर नहीं होती। मानसिक विकास सबका बराबर नहीं होता। इसलिए आँख से सब कुछ ठीक होने पर भी कान में भी सब कुछ स्वस्थ होने पर भी हमें जो ज्ञान का ग्रहण होता है वो एक से दूसरा का वो उतना ठीक नहीं होता, अच्छा नहीं होता। इसलिए कक्षा में जितने छात्र होते हैं, या विद्वान् के पास जितने श्रोता होते हैं प्रत्येक का ज्ञान प्रत्येक से भिन्न है, क्योंकि उन सबकी योग्यता एक-दूसरे से अलग है। इसलिए वेद जो मुख्य बात कह रहा है कि जो हमारे ज्ञान का अन्तर आ रहा है ग्रहण में, विवेचन में, व्यवहार में, लाने में स्मृति में, उसका कारण हमारी आँख या कान नहीं है क्योंकि इनके द्वारा प्राप्त होता है, ये प्राप्तकर्त्ता नहीं है। कान स्वयं श्रोता नहीं है और आँख स्वयं द्रष्टा नहीं है। इसलिए इनको याद रहे यह सम्भव नहीं है। साधन होने के नाते यह जड़ है, इसलिए यह दूसरी वस्तु को देखते हैं, दूसरी वस्तु को जानते पहचानते हैं, इन्हें अपना बोध थोड़े ही होता है। इसलिए इनका जो सामर्थ्य है वो इनकी अपेक्षा से मन में और मन की अपेक्षा से आत्मा में विद्यमान है, क्योंकि कर्तृत्व मूल रूप में आत्मा के पास है। लेकिन इन्द्रियों से अधिक सामर्थ्य मन के पास है। इसलिए इन्द्रियों से जो प्राप्त ज्ञान है वो आत्मा तक उतना

पहुँचा क्या, जितना इन्द्रियों को प्राप्त था? तो पता लगा कि उतना नहीं पहुँचा। तो क्या इन्द्रियों ने प्राप्त नहीं किया या इन्द्रियों के सामने उपस्थित नहीं था? था, प्रवचन देने वाले ने पूरा प्रवचन दिया और श्रोता ने पूरा प्रवचनन सुना, पुस्तक पढ़ने वाले ने पूरी पुस्तक को पढ़ा। लेकिन अनतर कहाँ आया? देखने वाले ने देखा, लेकिन आँख ने जितना दखिाया उससे कम देख पाया। कान ने जितना सुनाया, उससे बहुत कम सुन पाया। तो वास्तव में सुनना और देखना इन्द्रियों की अपेक्षा मन का विषय बन गया और मन का सामर्थ्य तो अधिक है किन्तु इन्द्रियों का मन के साथ सम्बन्ध कितनी देर रहा, तो उसके आधार पर पता लगता है कि उससे वह ज्ञान प्राप्त हुआ कि नहीं हुआ। इसलिए मन्त्र में जो बात कही गयी है - मनोजवेष्वसमा बभूवुः। मतलब मानसिक योग्यता दक्षता है, वो एक से दूसरे की भिन्न होती है। यदि यह समान होती तो सबको ज्ञान भी समान ही होता। लेकिन वेद कह रहा है मनोजवेष्वसमा बभूवुः जो मानसिक वेग हैं, मानसिक सामर्थ्य है वो बिल्कुल अलग है। उसके द्वारा ही ज्ञान का जो स्तर है, उसका पता चलता है। व्यक्ति समझदार है तो थोड़े से ही बहुत अधिक समझ लेता है। यदि समझदार नहीं है तो उसे बहुत कुछ बताने पर भी, सिखाने पर भी नहीं जान पाता। क्योंकि उसका मन जो है वह उस सामर्थ्य से युक्त नहीं है। इसलिए ज्ञान में हमें जो विशेष ध्यान देने की बात है कि हम समझते तो हैं कि हम आँख-कान आदि से ज्ञान प्राप्त करते हैं किन्तु मूल बिन्दु यह है कि जिसके पास आँख, कान, नाक, त्वचा, रसना भी है, हमारा ज्ञान इतने से पूर्ण नहीं होगा, क्योंकि हमारी चेतना के पास जो सबसे समर्थ वस्तु है जो हमारी इन्द्रियों को और चेतना को आपस में जोड़ती है, वो है मना अनेक इन्द्रियों के कार्यों को एक मन सम्पादित करता है, इसलिए उसका सामर्थ्य उन इन्द्रियों से अधिक है। वह सब इन्द्रियों का स्वामी है। इसलिए इन्द्रियों के पास जितनी क्षमता-योग्यता है वो सब का सब और उससे अधिक मन में है। इसके नाते हमें मन से कुछ अधिक उपलब्धि होनी चाहिए थी किन्तु इसके विपरीत हो रहा है। सब कुछ देखने, जानने सुनने के बाद भी हम उसको उपयोग में नहीं ला पाते, क्योंकि मानसिक परिस्थिति प्रत्येक की नितान्त अलग है। जैसे हमारी इन्द्रियाँ अलग-अलग है और एक-दूसरे के काम में स्थूल भाग में आती है किन्तु मन हमारा ही रहता है और उसे दूसरे के काम में किसी तरह से नहीं लाया जा सकता है।

इसलिए यहाँ जो वेद कह रहा है कि हम इन्द्रियों से, आँखों से, कानों से प्राप्त करते हैं, हम प्राप्त किया जानकर भी असमर्थ होते हैं तो हमे सोचना चाहिए कि हमने अपने मन का इसे प्राप्त करने के लिए कितना उपयोग किया है।

विद्या के कोष की रक्षा व वृद्धि राजा व प्रजा करें

वे ही धन्यवादार्ह और कृत-कृत्य हैं कि जो अपने सन्तानों को ब्रह्मचर्य, उत्तम शिक्षा और विद्या से शरीर और आत्मा के पूर्ण बल को बढ़ावें जिससे वे सन्तान मातृ, पितृ, पति, सास, श्वसुर, राजा, प्रजा, पड़ोसी, इष्ट मित्र और सन्तानादि से यथायोग्य धर्म से वर्त्तें। यही कोष अक्षय है, इसको जितना व्यय करे उतना ही बढ़ता जाये, इस कोष की रक्षा और वृद्धि करने वाला विशेष राजा और प्रजा भी है।

(सत्यार्थ प्रकाश सम्मुलास ३)

वैचारिक क्रान्ति के लिये सत्यार्थ प्रकाश पढ़ें।

सुखवाद और ऋषि दयानन्द

- श्री पं. गंगाप्रसाद उपाध्याय एम. ए.

संसार में दो प्रकार के मत हैं- एक मत जिसको बहुधा प्राचीन या पौरस्त्य मत कहा जाता है, संसार को असार, दु:खमय तथा मायावी समझता है। दूसरा नवीन तथा पाश्चात्य मत है, जो संसार को सारभूत, उन्नति का साधन तथा सुखमय मानता है। पहले मत वालों की रटन्त यह है कि-

धनानि भूमौ पशवश्च गोष्ठे, नारी गृहद्वारि सखी श्मशाने। देहश्चितायां परलोकमार्गे, धर्मानुगो गच्छति जीव एक:।

दूसरे मत के लोग कहते हैं-

Tell me not in mournful numbers Life is but an empty dream.

or

Life is real, life is earnest.

ऋषि नित्य सत्य के पोषक थे- अब प्रश्न यह है कि, आर्यसमाज की गणना इन दोनों में से किस मत में है शायद कुछ लोग समझते हैं कि, स्वामी दयानन्द पहले मत से सम्बन्ध रखते हैं, क्योंकि यह पाश्चात्य अथवा नवीन सभ्यता के पक्षपाती न थे। परन्तु हम ऐसा नहीं मानते। स्वामी दयानन्द पाश्चात्य या पौरस्त्य के पक्षपाती न थे। न पुराने या नये के। वह देश और काल की अपेक्षा सत्य के अधिक प्रेमी थे। वे किसी सिद्धान्त को केवल इसलिए मानने के लिए तैयार न थे कि, वह देशी या विदेशी नहीं है, या पौरस्त्य है या पाश्चात्य नहीं है, या प्राचीन है या नवीन नहीं है ।

स्वामी दयानन्द ने पूर्वीय या भारतीय कही जाने वाली सभ्यता में एक विशेष त्रुटि देखी, और उस त्रुटि के विरुद्ध अपनी आवाज उठाई। वह त्रुटि यह थी कि भारतीय लोगों ने संसार को नीरस, शुष्क, भयानक और दु:खमय समझ रखा था। जो व्यक्ति वा जाति नरक समझे, वह उसमें किस सुधार कर सके । जो संसार को मिथ्या या माया या स्वप्न या अकार समझे, वह किस प्रकार उन्नति कर सके। बाजीगर के सेवों से कौन भूख दूर कर सकता है। उसके रुपये के ढेरों से तो उसे स्वयं सन्तोष नहीं होता। स्वप्न में देखे हुए शत्रु पर कोई शस्त्र नहीं उठाता। न उसके मारने के लिए साधन ढूंढता है। स्वामी दयानन्द ने संसार की असारता तथा असत्यता का भरसक खण्डन किया। उन्होंने शोकवाद को हटा कर सुखवाद और आशावाद का प्रचार किया।

वेद स्यापे के गीत नहीं हैं- वे सत्यार्थप्रकाश के सातवें समुल्लास में लिखते हैं कि, संसार में दु:ख की अपेक्षा सुख कई गुना अधिक है। वस्तुत: वेदों का भी ऐसा ही मत है। खास पूर्ण परब्रह्म आनन्दमय ईश्वर ने संसार रचा, वह ऐसा छलिया, असार या दु:खमय कैसे हो सकता है। ईश्वर ने समस्त संसार हमारे सुख के लिए बनाया है। शीतल जल, स्वादिष्ठ फूल फल और इस सुख के भोगने के लिए इन्द्रियां-यह सब ईश्वर के आनन्दमयत्व का उपव्याख्यान है। उपनिषत् संसार को अक्षर का उपव्याख्यान बताती है। असार और मिथ्या संसार, संसार और सत् संसार का उपव्याख्यान कैसे हो सकता था । वस्तुत: अमेरिकन कवि लांगफैलो (Longfellow) के शब्द Life is real, life is earnest वेदों के अनेक मन्त्रों की प्रतिध्वनि मात्र हैं। वेदों में ईश्वर से शक्ति के लिए, ज्ञान के लिए, धन के लिए, अन्न के लिए, सांसारिक वैभव के लिए, स्वराज्य के लिए, पुत्र, पौत्र के लिए, सभी के लिए प्रार्थनाएँ विद्यमान हैं और होनी भी चाहिये। वेद-मन्त्र Mournful numbers अर्थात् स्यापे के गीत नहीं हैं, उनमें साहस, उत्साह और पराक्रम है ।

1. यहाँ जादूगर शब्द होना चाहिए ।'जिज्ञासु'

व्यवहारदशा एक भ्रम- वेद यह भी नहीं कहते कि संसार है तो असार ही परन्तु व्यवहार दशा में इसे सत्य मान लो। वस्तुत: ऐसा सिद्धान्त ही मनुष्य को निरुत्साही कर देता है। अगर किसी से कहा जाय कि यह पराधीनता, जो आज भारतवर्ष में पाई जाती है, है तो मिथ्या, परन्तु व्यवहार दशा में इसे सत्य मान लो तो क्या वह उत्साह के साथ लड़ सकेगा? यह भारतीय सभ्यता हो, परन्तु प्राचीन वैदिक भारतीय सभ्यता नहीं। इसका आरम्भ बौद्ध शून्यवादियों से हुआ, और इस को अब तक स्थित शंकर स्वामी तथा उनके अनुयायियों ने रखा।

वैदिक आशावाद- आजकल बहुत से श्लोक, बहुत से गीत, बहुत सी कहावतें, बहुत सी स्वयं सिद्धियां आर्यसामाजिक उपदेशकों के मुख से भी हम प्लेटफार्मों पर सुना करते हैं, जिनसे निराशावाद, रोदनवाद तथा दु:खवाद की झलक आती है। यह अवैदिक और स्वामी दयानन्द के मत के विरुद्ध हैं। यह शांकर भाष्यों तथा अन्य मायावादी ग्रन्थों से लिये गये हैं। ये नवीन वेदान्त के सिद्धान्त संस्कृत साहित्य में व्यापक से हो रहे हैं, परन्तु स्वामी दयानन्द ने कहीं इनका प्रतिपादन नहीं किया।

स्वराज्य संग्राम- स्वामी दयानन्द का उपदेश यह है कि संसार असार नहीं, मिथ्या नहीं-इसमें सुख है, आनन्द है। इसकी उपेक्षा न करो। इसे भोगो । सांसारिक वैभव की कोशिश करो। धन कमाओ, कलें बनाओ, स्वराज्य प्राप्त करो, चक्रवर्ती राज करो, परन्तु एक बात को ध्यान में रखो; वह यह कि संसार एक सुखमय मार्ग है, मंजिल नहीं है। जो मंजिल है, वह संसार से कई गुनी सुखप्रद है; और वह वही है जिसके लिये उपनिषद कहते हैं-

तत् ते पदं ब्रवीमि ओ३म् इति एतत्।

१. विदेशी शासकों के समय आर्य सामाजिक लेखों, पुस्तकों व प्रवचनों में स्वराज्य व देश के दुखड़े की बात करना आर्यसमाज की विलक्षणता थी । इतिहासप्रेमी यह नोट करें। 'जिज्ञासु'

परोपकारिणी सभा अजमेर के नवीन प्रकाशन रियायती मूल्यों पर

पुस्तक का नाम	पृ. सं.	वास्तविक मूल्य रुपये	छूट के साथ मूल्य रुपये
महर्षि दयानन्द सरस्वती का पत्र-व्यवहार (दोनों भाग)	१३९२	८००	५००
महर्षि दयानन्द के हस्तलिखित-पत्र	३३६	२००	१००
कुल्लियाते आर्यमुसाफ़िर (दोनों भाग)	९३८	९५०	६००
डॉ. धर्मवीर का सम्पादकीय संकलन (तीन भाग)	८१४	५००	२५०

यजुर्वेद भाष्य (महर्षि दयानन्द सरस्वती) पृष्ठ संख्या- २१९७, चार भागों का मूल्य = १३००/-
डाक-व्यय सहित विशेष छूट पर उपलब्ध मूल्य = १०००/-
पुस्तकों हेतु सम्पर्क करें:-दूरभाष - 0145-2460120, चलभाष - 7878303382

VEDIC PUSTKALAYA
0510800A0198064
1342679A
0510800A0198064.mab@pnb

वैदिक पुस्तकालय, अजमेर से क्रय की जाने वाली पुस्तकों की राशि ऑनलाइन जमा कराने हेतु
खाताधारक का नाम - वैदिक पुस्तकालय, अजमेर
(VEDIC PUSTKALAYA, AJMER)
बैंक का नाम - पंजाब नेशनल बैंक,
कचहरी रोड, अजमेर।
बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-
0008000100067176
IFSC - PUNB0000800
UPI ID :
0510800A0198064.mab@pnb

संस्था की ओर से....

क्या आप प्रतिदिन अतिथि यज्ञ नहीं कर पाते? तो आइये, अतिथि यज्ञ के होता बनिये

वैदिक नित्यकर्मों में पञ्चमहायज्ञ अवश्य करणीय कर्म हैं। इन्हीं में से एक है- अतिथि यज्ञ। प्रत्येक गृहस्थ के लिए अतिथि यज्ञ प्रतिदिन करना अनिवार्य है, किन्तु आपको प्रतिदिन अतिथि मिलना संभव नहीं, फिर अतिथि यज्ञ कैसे किया जाय? इसका उपाय है, कुछ राशि प्रतिदिन अतिथि यज्ञ के नाम से निकाल ली जाये और वह राशि एकत्र कर अतिथि सत्कार में गुरुकुल/आश्रम में भोजन आदि के सहयोग में दे दी जाय। इस राशि को प्रदान कर सभा के माध्यम से अतिथि यज्ञ सम्पन्न कर सकते हैं।

सभा की योजना के अनुसार प्रतिवर्ष ५ हजार एक सौ रु. की राशि प्रदान करने वाले उदार यशस्वी दानदाताओं का नाम अतिथि यज्ञ के स्थायी होता सदस्यों में अंकित किया जाता है, ऐसे सज्जनों के नाम परोपकारी में प्रकाशित भी किये जाते हैं।

आप से प्रार्थना है अपना नाम पता और संकल्प लिखकर अवगत करायें और अतिथि यज्ञ के होता बनें। अपनी राशि प्रतिमाह अथवा सुविधानुसार मनीआर्डर/डीडी/चैक/सभा के खाते में ऑनलाइन द्वारा अथवा स्वयं उपस्थित होकर कार्यालय में जमा करा सकते हैं।

आपका दान ८०जी (आयकर की धारा) के अंतर्गत कर मुक्त होगा।

अनेक 'अतिथि यज्ञ के होता' सदस्यों का आग्रह है, निश्चित तिथि, जन्मदिन, विवाह वर्षगांठ या विशेष अवसर पर वे अपनी ओर से संस्था में भोजन कराना चाहते हैं। ऐसे महानुभावों से निवेदन है कि वे अतिथि यज्ञ के होता के रूप में एक दिन के भोजन व्यय की राशि लगभग पाँच हजार एक सौ रुपये भेजते हुए इच्छित दिन का विवरण सूचित करेंगे, तो उन्हें उनके जन्मदिवस आदि पर परोपकारिणी सभा की ओर से दूरभाष द्वारा आशीर्वाद प्रदान किया जायेगा। यदि उस शुभ अवसर पर वे स्वयं उपस्थित होकर यजमान बनें तो यह सर्वोत्तम होगा।

अतिथि-यज्ञ के होताओं से अनुरोध

अपनी राशि भेजते समय **जन्मतिथि/वैवाहिक वर्षगाँठ आदि व दूरभाष संख्या** सूचित करना न भूलें। साथ ही यह भी अवश्य सूचित करा देवें कि पहले से भिजवा रहे हैं अथवा नया शुरू किया है।

दूरभाष - **8890316961**

परोपकारिणी सभा के प्रकल्पों में सहयोग करने हेतु बैंक विवरण

खाताधारक का नाम - परोपकारिणी सभा, अजमेर (PAROPKARINI SABHA AJMER)

१. बैंक का नाम-**भारतीय स्टेट बैंक, डिग्गी चौक, अजमेर।**

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-**10158172715** **IFSC-SBIN0031588**

email : psabhaa@gmail.com **सूचना देने हेतु चलभाष - 8890316961**

ऋषि मेला-2024 में सम्मानित

वैदिक धर्म के प्रचार-प्रसार में संलग्न विशिष्ट जनों का सम्मान करते सभा के अधिकारी।

आर जे/ए जे/80/2024-2026 तक प्रेषण : २९-३० नवम्बर २०२४ आर.एन.आई. ३९५९/५९

कार्यक्रम के प्रारम्भ में ऋषि उद्यान की यज्ञशाला के सम्मुख ध्वजारोहण करते हुए स्वागताध्यक्ष श्री एस.के. आर्य, श्री सज्जन सिंह कोठारी, सभा प्रधान श्री ओम् मुनि जी, मंत्री श्री कन्हैयालाल आर्य तथा अन्य आर्यजन।

सम्मानित कार्यकर्ता

ऋषि मेले में उपस्थित जनसमूह

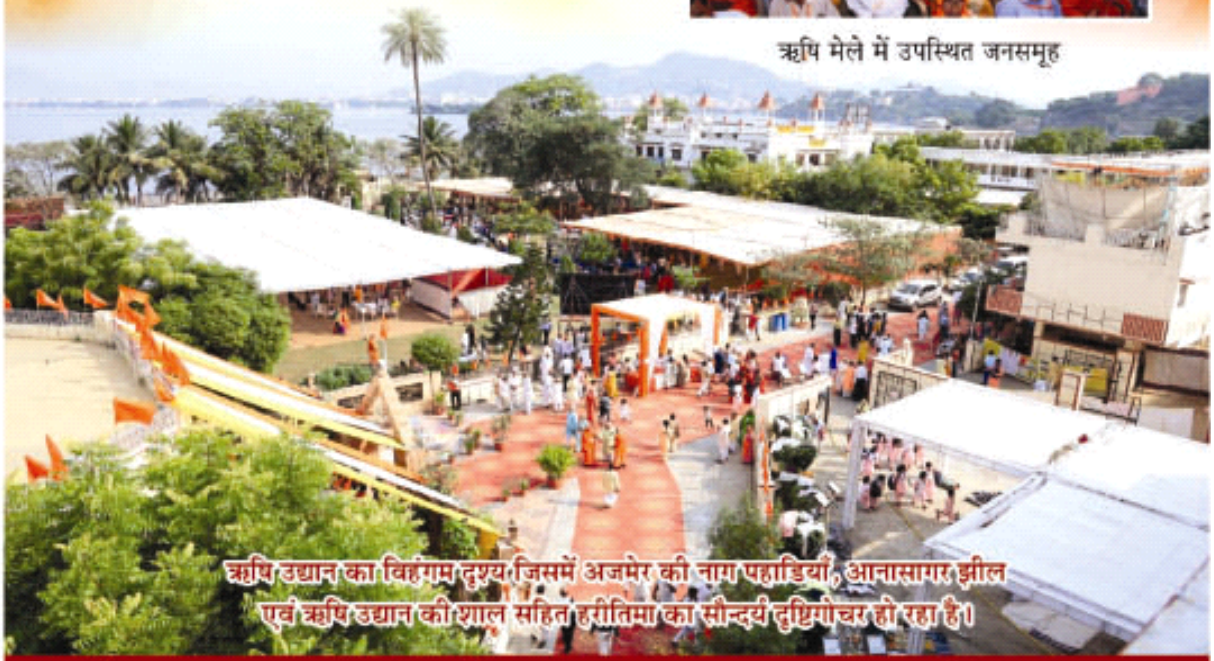

ऋषि उद्यान का विहंगम दृश्य जिसमें अजमेर की नाग पहाड़ियां, आनासागर झील एवं ऋषि उद्यान की शाल सहित हरीतिमा का सौन्दर्य दृष्टिगोचर हो रहा है।

प्रेषक:

परोपकारिणी सभा

दयानन्द आश्रम, केसरगंज,
अजमेर (राजस्थान) ३०५००१

सेवा में,

This document was created with the Win2PDF “Print to PDF” printer available at

https://www.win2pdf.com

This version of Win2PDF 10 is for evaluation and non-commercial use only.
Visit https://www.win2pdf.com/trial/ for a 30 day trial license.

This page will not be added after purchasing Win2PDF.

https://www.win2pdf.com/purchase/